हिन्दी-पद्य-र

छन्द-बनाना सीखने वालों के लिए
हिन्दी का पिङ्गल

लेखक
रामनरेश त्रिपाठी

प्रकाशक
हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग

आठवाँ संस्करण] अक्टूबर, १९३३ [मूल्य आठ आना

भूमिका

आजकल लोग, विशेषकर नवयुवक, एकान्त में घंटों दिमाग लड़ाकर, नवीन-प्राचीन भाव जो कुछ हाथ आया, उन्हें पद्य के टूटे-फूटे साँचे में ढालकर चाहते हैं कि संसार उसकी मधुर भाव-भरी मूर्ति को अपने हृदय में स्थान देकर उसका गौरव बढ़ावे। परन्तु जो लोग साहित्य संसार में अभी नये-नये चले आ रहे हैं, उनके पास ऐसा साँचा कहाँ है जिसमें वे अपने भावों को ढालकर मनोहर रूप और सुन्दर आकार-विशिष्ट मूर्त्ति संसार को दिखा सकें? हमने यह पुस्तक रूपी साँचा उन्हीं के लिए तैयार किया है। वे अपने भाव—अपने विचार इस साँचे में ढालकर उसे सुन्दर पद्य-रूप में संसार के सामने रक्खें। फिर देखें, संसार उनके रचना-चातुर्य का कितना सम्मान करता है।

यह पुस्तक नौसिख पद्य रचयिताओं के काम की है। इसमें उन्हीं विषयों का वर्णन किया गया है, जिनकी प्रारम्भ में आवश्यकता पड़ती है। इसे पढ लेने के पश्चात् कोई अलंकार-ग्रन्थ पढना चाहिये, तब कवित्व-शक्ति विकसित होगी।

इस पुस्तक में सब बातें सरल भाषा में अच्छी तरह समझाकर लिखी गई हैं। नये संस्करण में अलंकार और प्रस्तार का भी समावेश कर दिया गया है। छंदों की संख्या भी बढा दी गई

है। इससे यह पुस्तक सर्वांग-पूर्ण और विद्यार्थियों के लिये बड़ी ही उपयोगी हो गई है। आशा है, पढ़नेवाले इससे पूरा लाभ उठायेंगे।

छंदों के उदाहरण कुछ तो हमने स्वरचित रख दिये हैं, जिनके नीचे किसी का नाम नहीं। कुछ अन्य कवियों के ग्रन्थों से लेकर लिखे हैं, उनके नीचे हमने कवियों के नाम लिख दिये हैं।

रामनरेश त्रिपाठी



सूची

पद्य की विशेषताएँ

गद्य से पद्य मे कई विशेषताये हैं। उनमे से कुछ ये हैं—

१—पद्य मे थोडे शब्दो के द्वारा अधिक बाते कही जा सकती हैं।

२—पद्य का सम्बन्ध गान विद्या से है और गान-विद्या प्राणि-मात्र का हृदय मोह लेती है। इसलिये पद्य मनुष्य को स्वभाव ही से प्रिय है।

३—पद्य की रचना प्राय अक्षरों, मात्राओ और पदो की गिनती के अनुसार क्रमबद्ध होती है। इसलिये वह पढने में भी अच्छा मालूम होता है।

४—पद्य को कठस्थ रखने मे सुविधा होती है।

५—पद्य के द्वारा थोडे समय मे अधिक प्रभावोत्पादक बाते कही जा सकती हैं।

६—पद्य के द्वारा भाषा मे स्थिरता और प्रौढता आती है भाषा के अधिकाश ललित और प्रभावशाली शब्द प्राय पद्य द्वारा ही समाज में प्रचार पाते हैं।

वर्ण और मात्रा

वर्ण या अक्षर दो प्रकार के होते हैं—दीर्घ वा "गुरु" और ह्रस्व वा "लघु"।

वर्णो के उच्चारण मे जो समय लगता है, उसे मात्रा कहते हैं।

जो समय ह्रस्व वर्ण, जैसे—अ, इ, उ, ऋ, क, कि, कु, कृ इत्यादि के उच्चारण में लगता है, उसकी एक मात्रा मानी जाती है, और जो समय दीर्घ वर्ण, जैसे—आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः आदि के उच्चारण में लगता है, उसकी दो मात्रायें मानी जाती हैं, क्योंकि दीर्घ वर्ण के उच्चारण में ह्रस्व वर्ण की अपेक्षा दुगुना समय लगता है।

उदाहरण—जैसे "राजा" शब्द, इसमें 'रा' और 'जा' दोनों अक्षर दीर्घ हैं। इसलिये इनमें से प्रत्येक में दो-दो मात्रायें हैं, और दोनों में मिलकर चार मात्रायें हैं। इसी प्रकार 'कला' शब्द में 'क' ह्रस्व और 'ला' दीर्घ है। 'क' की एक मात्रा और 'ला' की दो मात्रायें, दोनों मिलकर इस शब्द में तीन मात्रायें हुईं।

अनुस्वार और विसर्ग की भी दो मात्रायें मानी जाती हैं। जैसे—"संग", इस शब्द में "सं" दीर्घ और "ग" ह्रस्व है, और दुःख में "दुः" दीर्घ और "ख" ह्रस्व है।

परन्तु जिस अक्षर के ऊपर अर्द्ध-बिन्दु हो, उसकी एक ही मात्रा मानी जाती है। जैसे—"हँस", इसमें "हँ" और "स" दोनों की एक-एक मात्रा है।

हिन्दी-कविता में संयुक्ताक्षर के पहले का अक्षर कहीं दीर्घ माना जाता है, कहीं नहीं। दोनों प्रकार के उदाहरण मिलते हैं। यह कवि की इच्छा और सुभीते की बात है। चाहे वह संयुक्ताक्षर के पहले अक्षर को दीर्घ माने या ह्रस्व। हिन्दी-भाषा में इसके लिए कोई खास नियम नहीं है। हाँ, कुछ शब्दों में

सयुक्ताक्षर के पहले अक्षर को दीर्घ मानना ही पडता है। जैसे-सत्य, कल्प, रम्य, तत्व, शब्द आदि। इनमे स, क, र, त और श दीर्घ माने जायँगे और त्य, ल्प, म्य, त्व, और ब्द ह्रस्व।

परन्तु किसी शब्द का पहला अक्षर यदि सयुक्त है तो उस शब्द मे पहले जो शब्द है उसका अन्तिम अक्षर दीर्घ ही पढा जायगा, इसके लिये कोई बाध्यता नही है। पढने मे जिस तरह सुगमता हो, उसे वैसा ही पढ लेना चाहिये। जैसे, सूर्य-प्रभा इनमे 'प्र' के पहले का 'य' दीर्घ भी पढा जा सकता है और ह्रस्व भी। कवि अपनी सुविधा के अनुसार चाहे जैसा प्रयोग कर सकता है।

लघु और गुरु

पद्य-साहित्य मे ह्रस्व वर्ण को लघु और दीर्घ वर्ण को गुरु कहते हैं। लघु का चिन्ह एक खडी पाई "।" और गुरु का चिन्ह "ऽ" है।

सुभीते के अनुसार हिन्दी के कवि कभी-कभी गुरु अक्षर को लघु कर लिया करते हैं। जैसे—दु:ख को दुख, सग को सँग, राजा को राज इत्यादि।

परन्तु खास-खास शब्द, जो दोनों रूपों मे प्रचलित हैं, उन्हीं को ऐसा करने का कवि को अधिकार है, सब शब्दों को नही। हिन्दी-कविता मे हल् वर्ण की एक मात्रा मानी जाती है।

जैसे महान् में न् को "न" और सत् में त् को "त" मान लिया गया है।

कभी-कभी छन्द की गति के विचार से गुरु वर्ण को लघु पढ़ना पड़ता है। जैसे—जामवंत के वचन सोहाये—इसमें "सोहाये" शब्द का "सो" वर्ण गुरु होने पर भी लघु पढ़ा जायगा।

गति और यति

प्रत्येक छन्द में एक प्रकार की गति अर्थात् पाठ-प्रवाह भी होता है। इसका कोई खास नियम नहीं बतलाया जा सकता। इसका जानना केवल अभ्यास पर निर्भर है। जैसे—"लखन जब सकोप बचन बोले"—इसमें १६ मात्राएँ तो हैं, परन्तु चौपाई की गति नहीं है। यहाँ गति-भङ्ग-दोष माना जायगा। इसकी गति ठीक करने में यह "लखन सकोप बचन जब बोले" होगा।

बहुत से छन्दों में विराम का भी नियम होता है। अर्थात् पिङ्गल के अनुसार शब्द-योजना इस प्रकार से होती है कि पढ़ते-पढ़ते नियमित स्थान पर थोड़ा सा रुककर तब आगे पढ़ना पड़ता है, उसे विराम, विश्राम या यति कहते हैं।

गण

तीन-तीन वर्णों का एक-एक गण होता है। गण ८ हैं। उनके नाम और लक्षण नीचे लिखे जाते हैं—

संख्या	गण	रूप	संकेत नाम	उदाहरण
१	मगण	S S S	म	मायावी
२	नगण	I I I	न	नलिन
३	भगण	S I I	भ	भारत
४	यगण	I S S	य	भवानी
५	जगण	I S I	ज	जवान
६	रगण	S I S	र	रोहिणी
७	सगण	I I S	स	सरला
८	तगण	S S I	त	संसार

इन आठों गणों को इनके रूप-सहित याद रखने की कई युक्तियाँ हैं, जैसे—

"यमाताराजभानसलगम्"

इस सूत्र में पहले के आठ अक्षर आठों गणों के आद्यक्षर हैं। इसी सूत्र में गणों के रूप भी हैं। जिस गण को जानना हो उसी अक्षर के साथ आगे के दो अक्षर और मिलाने से वह गण बन जायगा। जैसे—यगण की पहचान के लिये 'य' के आगे के दो अक्षर मिलाये तो "यमाता" हुआ। इसमें आदि में लघु और मध्य और अंत में दो गुरु हैं। इसी प्रकार यदि सगण जानना हुआ तो 'स' के आगे के "लगम्" को उसके साथ मिलाया तो "सलगम्" हुआ। 'ग' के आगे अनुस्वार है, इसलिये "ग" गुरु हुआ। अतएव आदि लघु, मध्य लघु और अंत गुरु सगण हुआ। इसी प्रकार और गण भी निकल

हैं। आठ अक्षरों के बाद 'ल' और 'ग' अक्षर लघु और
के संकेत नाम हैं।

दूसरी रीति—

आगे लिखे दोहे से भी गणों और उनके रूपों का पता
ल जाता है—

आदि मध्य अवसान में, य र त सदा लघु मान।
क्रम से होते भ ज स गुरु, म न गुरु लघु त्रय जान॥

अर्थात् यगण के आदि में लघु, शेष दोनों गुरु, रगण के
ध्य में लघु, शेष आदि और अन्त में गुरु, तगण के अवसान
(अन्त) में लघु, शेष पहले दो गुरु, इसी प्रकार भगण,
जगण और सगण के आदि, मध्य और अन्त में क्रमश गुरु
और शेष लघु होते हैं। मगण में तीनों वर्ण गुरु और नगण
में तीनों लघु होते हैं।

देवता, गणागण और फल

आठों गणों के आठ देवता माने गये हैं, और उनके फल
भिन्न भिन्न हैं। वे इस प्रकार हैं—

गण	देवता	फल
म	पृथ्वी	श्री
न	स्वर्ग	सुख
भ	चन्द्रमा	यश
य	जल	वृद्धि

गण	देवता	फल
ज	सूर्य	शोक
र	अग्नि	मृत्यु
स	वायु	भ्रम
त	आकाश	शून्य

नीचे लिखे श्लोक को याद कर लेने से ग्रहों के देवता और उनके फल सक्षेप ही में मालूम हो जायँगे—

> मो भूमि श्रियमातनोति य जल वृद्धि र चाग्निर्मृतिं ।
> सो वायु परदेश दूरगमने त व्योम शून्यं फल ॥
> ज सूर्यो रुज का ददाति विपुल भेन्दुर्यशो निर्मल ।
> नो नाकश्च सुखप्रद फलमिद प्राहुर्गणाना बुधा ॥

आठ गणों मे म, न, भ, य, ये चार शुभ हैं, और शेष ज र, स, त, अशुभ। किसी मनुष्य को प्रशसा में कुछ कविता करनी हो तो उसके प्रारम्भ मे अशुभ गण न आने चाहिये। छद के प्रथम चरण के आदि के तीन अक्षरो के लिये ही यह नियम है। शेष चरणों के आदि या मध्य मे तो चाहे जैसा शुभ-अशुभ गण पड़ जाय, उससे कुछ हानि नही और ईश्वर विषयक कविता मे तो शुभ-अशुभ गण का कुछ विचार ही न करना चाहिये।

किसी किसी का मत है कि गणागण का विचार प्रथम चरण के प्रारम्भ के छ अक्षरो मे करना चाहिये। छ अक्षरो के दो गण हुये। किन-किन दो गणो के साथ रहने मे क्या क्या फल होता है, यह नीचे लिखा जाता है—

मगण नगण ये मित्र हैं, भगण यगण हैं दास।
र स रिपु सम हैं शोकप्रद, त ज हैं निपट उदास॥

मित्र+मित्र=सिद्धि	उदास+मित्र=अल्प फल
मित्र+दास=जय	उदास+दास=दुख
मित्र+उदास=हानि	उदास+उदास=अफल
मित्र+शत्रु=मित्र नाश	उदास+शत्रु=दुख
दास+मित्र=सिद्धि	शत्रु+मित्र=शून्य
दास+दास=हानि	शत्रु+दास=प्रियानाश
दास+उदास=पीडा	शत्रु+उदास=शका
दास+शत्रु=पराजय	शत्रु+शत्रु=नाश

गणागण का दोष मात्रिक छन्दों ही में माना जाता है, वर्ण-वृत्तो मे नहीं। परन्तु वर्ण-वृत्तो मे भी यह ध्यान रखना चाहिये कि यदि प्रारम्भ में ज, र, स या त गण पडते हों तो शब्द मगलवाची होना चाहिये।

प्रत्येक चरण मे गणों की गिनती प्रथम अक्षर से की जाती है। अन्त मे जो दो या एक अक्षर बच जाते हैं, वे लघु हुये तो लघु और गुरु हुये तो गुरु मान लिये जाते हैं।

दग्धाक्षर

पद्य में अक्षरो के शुभाशुभ पर भी ध्यान रखने का नियम है। स्वर सभी शुभ माने गये हैं। व्यजनों में शुभ और अशुभ इस भाँति माने गये हैं—

शुभ—क, ख, ग, घ, च, छ, ज, त, द ध, न, य, श, स, ह।

अशुभ—ङ, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, थ, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, ष, ह ।

अशुभ अक्षरों में भी झ, ह, र, भ और ष तो अत्यन्त दूषित हैं। ये दग्धाक्षर कहलाते हैं। पद्य के आदि में इनका होना बड़ा दोष है। हाँ, देवता सम्बन्धी किसी शब्द का प्रारम्भ इन्हीं अक्षरों से हो तो वह अशुभ नहीं समझा जाता और दीर्घ अक्षर कोई भी दग्धाक्षर नहीं माना जाता।

तुक

हिन्दी-कविता में तुक की प्रधानता उसके प्रारम्भ-काल ही से चली आती है। बहुत ही कम ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिनमें तुकों का कुछ ख्याल न किया गया हो। सत-कवियों ने कहीं-कहीं नाम-मात्र के बेतुके पद भी कहे हैं। उनमें से दरिया साहब का एक पद नीचे लिखा जाता है—

अबके बार बकस मोरे साहिब तुम लायक सब जोग हे।
गुनह बकसिहौ सब भ्रम नसिहौ रखिहौ अपने पास हे।
अछै बिरिछ तर लै बैठैहौ तहवाँ धूप न छाँह हे।
चाँद न सुरुज दिवस नहिं तहवाँ नहि निसु होत बिहान हे।
अमृत फल मुख चाखन देहो इतनी अरज हमार हे।
भवसागर दुख दारुन मिटिहै छुटि जैहै कुल परिवार हे।
कह "दरिया" यह मङ्गलमूला अनूप फूलै जहाँ फूलहे।

इस प्रकार के दो-चार उदाहरणों के सिवा शेष हिन्दी की सब प्राचीन कविता में तुक का पूरा ध्यान रक्खा गया है।

तुक मनुष्य को स्वभाव ही से प्रिय है। अशिक्षित और गँवार लोगों को भी तुक न मिलना खटकता है। अहीर, धोबी, चमार, कहार और नाई आदि के जातीय गानों में भी तुक मिला रहता है। इन सब बातों से जाना जाता है कि पद्य के लिये तुक एक प्रधान वस्तु है।

यद्यपि संस्कृत में तुक मिलाने की बिल्कुल परवा नहीं की गई है। वाल्मीकि, व्यास, भास, कालिदास, क्षेमेन्द्र आदि किसी कवि ने तुक मिलाने का प्रयास नहीं किया। पर उनकी रचना में भी जहाँ अपने आप तुक मिल गया है, वहाँ पद्य अधिक कर्ण-मधुर और आकर्षक हो गया है।

गान-विद्या का काम बिना तुक के चल ही नहीं सकता। जयदेव ने गीत-गोविन्द में तुकों के बहुल-प्रयोग ही से अमृत-वर्षा की है। एक पद सुनिये—

पतति पतत्रे विचलित पत्रे शङ्कित भवदुपयानम्।
रचयति शयनं सचकित नयनं पश्यति तव पन्थानम्॥

उर्दू के शेर भी एक प्रकार से बेतुके ही होते हैं। पूरी गजल में तो प्रत्येक शेर के दूसरे चरण का तुक मिला रहता है। पर बातचीत में जब किसी एक शेर का अलग प्रयोग किया जाता है, तब प्राय वह बेतुका ही रहता है—

मगरिब ने खुर्दबीं से कमर उसकी देख ली।
मशरिक को शायरी का मजा किरकिरा हुआ॥
महफिले यार में उठने को उठे तो लेकिन।
दर्द की तरह उठे गिर पड़े आँसू की तरह॥

बार-बार सुनने का अभ्यास पड़ जाने से उर्दू-कविता के शेर बेतुके ही अच्छे लगने लगे। जैसे हिन्दी में आल्हा छन्द बेतुका ही गाँव वालों के मन को मोह लेता है। इसी प्रकार संस्कृत-कविता अतुकान्त होने पर भी हृदय को वश में कर लेती है। पर यह सब महत्व तो कवितागत भाव का है। तुक कान का विषय है। कान को प्रिय लगने के लिये तुक मिलाने की आवश्यकता अस्वीकार करने की बात नहीं। मन को वश करने के लिये कान की खुशामद करनी ही पड़ेगी।

खड़ी बोली की कविता में भी तुक ही की प्रधानता है। इधर कुछ दिनों से अँग्रेजी और बङ्गला की नकल करके हिन्दी में अतुकान्त कविता का भी प्रचार हो चला है। यह प्रवाह भी किसी सीमा तक जाकर ही रुकेगा। पर यह निश्चय है कि सर्वसाधारण में सदैव तुकबन्दी ही की प्रधानता रहेगी, क्योंकि वह मनुष्यमात्र के स्वभाव ही में प्रिय है।

यहाँ तुक के सम्बन्ध में कुछ जानने योग्य बातें लिखी जाती हैं—

प्रत्येक छन्द के चरणान्त में जो समस्वर अक्षर होते हैं, उनका नाम तुक है।

तुकबन्दी से यही मतलब नहीं कि अन्त के अक्षर मिल जाँय, बल्कि स्वर भी मिलने चाहिये।

तुक उत्तम, मध्यम और निकृष्ट तीन प्रकार के होते हैं।

यदि पद्य के अन्त में दो गुरु आ पड़ें, तो वहाँ पाँच मात्राओं का समस्वर होना उत्तम और चार का मध्यम है।

यहाँ सब के अलग अलग उदाहरण दिये जाते हैं—

उत्तम

केहि ढूँढत तेरो कहा खोयो क्यों अकुलाति लखाति ठगी सी।
हरीचन्द ऐसहि उरझी तो क्यो नहि डोलति सङ्ग लगी सी॥

हरिश्चन्द्र

मध्यम

प्रभो शङ्करानन्द आनन्द-दाता।
मुझे क्यों नहीं आपदा से छुड़ाता॥

शङ्कर

यदि पद्य के अन्त मे गुरु लघु (SI) या लघु गुरु (IS) आ पड़े, तो पाँच मात्राओं का तुक उत्तम, चार का मध्यम, तीन का निकृष्ट और एक का तो सर्वथा त्याज्य है। जैसे—

उत्तम

जिय पै जु होय अधिकार तो विचार कीजे, लोकलाज भलो बुरो भले निरधारिये। नैन श्रौन कर पग सबै परबस भये उतै चलि जात इन्हें कैसे कै सँभारिये। हरीचन्द भई सब भाँति

सों पराई हम इन्हें ज्ञान कहि कहो कैसे कै निवारिये। मन मे
रहै जो ताहि दीजिये बिसारि मन आपै बसै जामें ताहि कैसे कै
बिसारिये॥

हरिश्चन्द्र

मध्यम

हमहि तुमहि सरवरि कस नाथा।
कहहु तो कहाँ चरन कहँ माथा॥

तुलसीदास

निकृष्ट

तन ताजी असवार मन, नयन पियादे साथ।
यौवन चल्यो शिकार को, बिरह बाज लै हाथ॥

सर्वथा त्याज्य

निन्दा अस्तुति उभय सम, ममता मम पद-कञ्ज।
ते सज्जन मम प्रान प्रिय, गुन-मन्दिर सुख-पुञ्ज॥

तुलसीदास

मुनि जेहि ध्यान न पावहीं, नेति नेति कह वेद।
कृपासिन्धु सोइ कपिन्ह सन, करत अनेक विनोद॥

तुलसीदास

यदि पद्य के अन्त मे दो लघु आ पडे तो चार मात्राओं

९—भूखण्ड, रन्ध्र, अंक, ग्रह, निधि, भक्ति।

१०—दोष, दिशा, दशा।

११—शिव।

१२—राशि, सूर्य।

१३—किरण, नदी।

१४—भुवन, मनु, रत्न, विद्या।

१५—तिथि।

१६—कला, संस्कार, शृङ्गार।

१७—कोई खास नाम नहीं है। १०+७ या और कोई दो संकेत मिलाकर काम निकाला जा सकता है।

१८—पुराण।

१९—कोई खास नाम नहीं है।

२०—नख।

पद्य में अंकों की गिनती दाहिनी ओर से बाईं ओर को होती है। जैसे—१५ कहना हुआ तो शर, चन्द्र कहेंगे। यह क्रम से तो ५१ हुआ, परन्तु कविता में ऐसा मान लिया गया है कि अंतिम अंक को पहले कहेंगे।

संख्या-संकेतों के बदले उनके पर्यायवाची शब्द लिखने में दोष नहीं। वेद के लिये श्रुति और चन्द्रमा के लिये ... जा सकता है।

... तो उनके किन-किन अंगों

हो, उसे विषम कहते हैं। जैसे आर्या—मात्रिक छन्द और वर्ण-वृत्त की पहचान के लिए यह दोहा याद कर लेना चाहिये—

गुरु लघु चारो चरण मे, क्रम से मिले समान।
वर्ण-वृत्त है, अन्यथा, मात्रिक छन्द प्रमान॥

अर्थात् जिस छन्द के चारों पदों मे गुरु और लघु समान क्रम से मिले, वह वर्ण-वृत्त है और जिसके पदों में गुरु-लघु का कोई क्रम न हो, केवल मात्रा ही समान हो, उसे मात्रिक छन्द समझना चाहिए।

संख्या-सूचक शब्द

पद्य में यदि कही सख्या दिखाने का काम पडता है तो प्राय सख्या-सूचक शब्दों ही का प्रयोग किया जाता है। जैसे, जहाँ "एक" कहना हुआ वहाँ "चन्द्र" कहने से भी एक का बोध होता है। कुछ सख्या-सूचक शब्द नीचे लिखे जाते हैं—

०—आकाश।
१—आत्मा, भूमि, चन्द्र,।
२—पक्ष, आँख, भुजा, अयन।
३—गुण, ताप, राम, काल, अग्नि।
४—वेद, युग, वर्ण, आश्रम, पदार्थ।
५—शर, पाडव, गति, प्राण, यज्ञ, कन्या, भूत, गव्य।
६—ऋतु, रस, राग, अलिपद, वेदाग, शास्त्र।
७—मुनि, सागर, स्वर, गिरि, ताल, लोक, वार, अश्व।
८—वसु, सिद्धि, दिग्गज, योग, याम।

९—भूखण्ड, रन्ध्र, अंक, ग्रह, निधि, भक्ति।

१०—दोष, दिशा, दशा।

११—शिव।

१२—राशि, सूर्य।

१३—किरण, नदी।

१४—भुवन, मनु, रत्न, विद्या।

१५—तिथि।

१६—कला, संस्कार, शृङ्गार।

१७—कोई खास नाम नहीं है। १०+७ या और कोई दो संकेत मिलाकर काम निकाला जा सकता है।

१८—पुराण।

१९—कोई खास नाम नहीं है।

२०—नख।

पद्य में अंकों की गिनती दाहिनी ओर से बाईं ओर को होती है। जैसे—१५ कहना हुआ तो शर, चन्द्र कहेंगे। यह क्रम से तो ५१ हुआ, परन्तु कविता में ऐसा मान लिया गया है कि अंतिम अंक को पहले कहेंगे।

संख्या-संकेतों के बदले उनके पर्यायवाची शब्द लिखने में भी कुछ दोष नहीं। वेद के लिये श्रुति और चन्द्रमा के लिये राशि लिखा जा सकता है।

वर्णन

किसी वस्तु का वर्णन करना हो तो उसके किन-किन अंगों

का या किन-किन गुणों का वर्णन करना चाहिये, यह नीचे
लिखा जाता है। इनको अच्छी तरह समझ लेने पर वर्णन
करने की शक्ति बढ़ जायगी।

भूमि—देश, नगर, वन, पहाड़, आश्रम, नदी, ताल, ऋ
और सूर्य चन्द्र के द्वारा उत्पन्न हुये प्रभाव का वर्णन।

देश—रत्नों की खानि, पशु, पक्षी, भाषा, भूषण, वेश
सुगंध और मनुष्यों के ऐश्वर्य, दान-दाक्षिण्य आदि।

नगर—खाई, किला, महल, ध्वजा, बावड़ी, कूप, तालाब
स्त्रियों का सौन्दर्य, बाग, विहार-स्थल, निवासियों के सुख औ
निर्भयता आदि।

वन—सिंह, हाथी आदि भयानक जन्तु, दावाग्नि, वृक्ष
लता और कुञ्जों का भयावना दृश्य, नदी, खोह, राक्षस आ
का भय।

पहाड़—चोटी, गुफा, दरी, धातु, औषध, झरना, सिं
समुदाय और वृक्ष-श्रेणी।

आश्रम—होम का धूम, वेद का गान, सिंह, मृग, मो
और साँप आदि परस्पर विरोधी जीवों का वैर त्याग और मु
का निवास आदि।

नदी—जलचर, जलज, प्रवाह, तरंग, तट, जल का रू
स्नान आदि।

बाग—सुन्दर लता, पुष्प, कोकिल आदि पक्षी, भ्रम
सुगंधित वायु, लताकुञ्ज, पक्षियों और भ्रमरों का मधुरस्वर आदि

तालाब—जल रंग, कमल, हाथी की केलि, मछली आदि

समुद्र—बड़ी तरंग, गम्भीरता, रत्न, जल जन्तु, चन्द्रोदय, अगमता आदि।

वसन्त—वृक्षों और लताओं का नये पत्र और पुष्प से लस जाना, कोकिल का कूजना, भौंरे का गूँजना, सुगन्धित वायु, वन्यजीवों का आनन्द, किंशुक आदि पुष्पों की बहुलता आदि।

ग्रीष्म—घोर गर्मी, लू चलना, जलाशयों का सूख जाना, जीवधारियों की व्याकुलता, वृक्षों का जल जाना, सूर्य की प्रचण्डता आदि।

वर्षा—घटा, वृष्टि, हंस, बगुला, मोर, चातक, बिजली, कदम्ब, केतकी, गरजना, इन्द्रधनुष, भूमि की हरियाली, पानी की प्रचुरता आदि।

शरद—निर्मल आकाश, चन्द्र-प्रकाश, काम, पथिक और राजा का प्रयाण, खञ्जन, निर्मल जल और फसल का वर्णन।

हेमन्त—शीत, बड़ी रात्रि, छोटा दिन, आग और रुई की उपयोगिता, पुष्टिकारक भोजन आदि।

शिशिर—हिम, ठंडी हवा, सूर्य की किरण, पतझड़ आदि।

सूर्योदय—उदय होते समय की लाली, अन्धकार-चोर तारा-दीप-चन्द्रमा और कुमुद की हानि आदि।

प्रभात—चिड़ियों का चहचहाना, भौंरों की गूँज, फूलों का खिलना, ठंडी हवा का चलना, वेद और शंखध्वनि, प्रकाश आदि।

चन्द्रोदय—चकवा-चकई, कमुदिनी का खिलना, चकोर, समुद्रतरङ्ग, किरणों की स्निग्धता आदि।

राज्य—राजा, रानी, राजकुमार, मन्त्री, सेना, सेनापति, दूत, प्रजा, प्रजा का सुख, अच्छे राजनियम आदि।

राजा—प्रतिज्ञा-पालन, पुण्य, प्रताप, शासन, बल, बुद्धि, विवेक, धैर्य, दंड, सत्य, वीरता, दान, कोष, सेना, क्षमा, कृपा आदि।

संग्राम—सेना का शब्द, रज, कवच, शस्त्र चलाना, साहस, ललकारना, मारना, कबन्ध उठना, रक्त की नदी बह चलना आदि।

उपमा

दो वस्तुओं में जहाँ आकृति, गुण और दशा में समानता पाई जाती है, वहाँ उपमालङ्कार होता है। जिस वस्तु की किसी अन्य वस्तु से उपमा दी जाय उसे उपमेय और जिससे उपमा दी जाय उसे उपमान कहते हैं। जैसे—"मुख चन्द्र सा सुन्दर है", इसमें 'मुख' उपमेय और 'चन्द्र' उपमान है। "सा" उपमा का वाचक और 'सुन्दर' उसका गुण है।

किसी स्थान पर कैसी उपमा दी जानी चाहिये? यह तो कवि की प्रतिभा पर निर्भर है। अच्छे प्रतिभाशाली कवि सदा अनूठी उपमाएँ दिया करते हैं। परन्तु कुछ उपमायें, जो खास-खास अवसरों के लिये निर्धारित सी हो गई हैं, यहाँ लिखी जाती हैं—

श्वेत—कीर्ति, हास्य, शरद्-घन-ज्योत्स्ना, शशि, सूर्य, सुधा, कपूर, बगुला हीरा, कांस, केंचुली, हिम, कमल, भस्म, कपास, रेत, चन्दन, हंस, दूध, दधि, शङ्ख आदि।

पीला—हरड, हल्दी, चंपक, दीप-ज्योति, भूमि, अकुर, गवक, वानर, किंजल्क, केशर, सोना, चपला, दिवस, पराग आदि ।

श्याम—आकाश, साँप, खजन, नीलकठ, मोर, विश्वासघाती, पाप, राक्षस, अन्धकार, जामुन, यमुना, तिल, दुष्ट का मन, नीलकमल, हाथी, मील, मसि, काजल, कस्तूरी, भौंरा, रात, अपयश, कलक, आँख के तारे, कोकिल, भैंस, काक, कुरूप, कीच, बाल, काम, कलह, छल, राम, कृष्ण, नीलम, अलसी का फूल आदि ।

लाल—मङ्गल, बीरबहूटी, लाल फूल, रक्तचन्दन, मदिरा, रवि, ओंठ, मुरगे की चोटी, माणिक, कुँदरू, कमल, जपा, अनार का फूल, ढाक का फूल, अग्नि, पल्लव, क्षत्रिय का धर्म, मँजीठ, महावर, रुधिर, नख, गेरू, सध्या आदि ।

कुटिल—अलक, ललाट, तोते का मुख, साँप, कटाक्ष, धनुष, बिजली, बाल चन्द्रमा, शूकर का दाँत, कपटी आदि ।

कोमल—पल्लव, फूल, दया, माखन, प्रेम, कमल आदि ।

कठोर—वज्र, हीरा, कुच वीर का चित्त, सूम का मन, कछुवे की पीठ, हठ, दुष्टों की दृष्टि आदि ।

अचल—सती का चित्त, युद्ध में वीर सन्त का मन, धर्म आदि ।

चपल—मृग, वानर, पीपल का पत्ता, सियार, लोभी का मन, बालक, मछली, खजन, भौंरा, हाथी का कान, बिजली, वायु और कुलटा का कटाक्ष आदि ।

सुखद—विद्वान् पुत्र, पतिव्रता-स्त्री, विद्या, नीरोग शरीर, धन और मित्र का मिलन आदि।

दुःखद—पाप, पराजय, झूठ, हठ, मूर्ख मित्र, कुरूपता, क्रोधी स्वभाव, व्याधि, अपमान ऋण, बुरा स्वामी, बुरे गॉव में निवास, कुलटा स्त्री, परतन्त्रता, दरिद्रता, शत्रु आदि।

मन्दगति—हंस, हाथी, पतिव्रता स्त्री की हँसी और बुद्धिमानों का विनोद आदि।

शीतल—मलय-मारुत, घनसार, चंद्रमा, जल, हिम, शीत, कमल, मृदुवाणी आदि।

तप्त—शत्रु का प्रताप, दुर्वचन, विरह, सूर्य, अग्नि, तृष्णा, पाप आदि।

सुस्वर—कलरव, कोकिला, मोर, हंस, वीणा, बाँसुरी, मैना आदि।

कुस्वर—उलूक, भैंस, बकरा, कौवा, गधा, कुत्ता, सियार आदि।

मधुर—चन्द्रमा की किरन, माखन, दाख, कवि की युक्ति, मिश्री, ऊख, अमृत, बालक की बातें, स्त्री का आकार आदि।

बली—वायु, हनुमान, भीम, बालि, बलदेव, सिंह, हाथी, सती, गरुड, देव, काल आदि।

नखशिख

केश—घटा, मरकत के सूत, साँप, अंधकार के तार, सेवार, भ्रमर।

वेणी—साँपिनी।

माँग—कज्जल के कूट पर दीप-शिखा, श्याम घनमण्डल में दामिनी, कसौटी पर कंचन की लीक अंधकार के हृदय में प्रकाश का वाण, ढाल पर कामदेव की दुधारी तलवार।

अलक—साँपिनी, भ्रमरावली, श्यामघटा।

मुख—कमल, दर्पण, चन्द्र।

ललाट—अर्द्ध चन्द्र, स्वर्ण की पट्टी।

भृकुटी—लता, धनुष, खड्ग, पताका, पल्लव।

नेत्र—चकोर, मीन, मृग, खंजन, कमल, भ्रमर, कामशर।

कपोल—दर्पण, गुलाब।

कपोल का तिल—सुधासर में नील कमल, चन्द्र पर सिंधु-बिन्दु, कमल में अलि दर्पण पर मोरचा।

शीतला के दाग—दृष्टि गड जाने के चिन्ह।

दाँत—मोती, मणि, कुन्दकली, अनार के दाने, हीरा।

नासिका—तोता, तिल प्रसून, किंशुक।

अधर—विम्बाफल, मूँगा, लाल फूल।

रसना—पट्रस की कसौटी।

मुखवास—चन्दन, चमेली, वकुल, कमल की सुगंध।

हास्य—कौमुदी, बिजली, सुधा, प्रकाश, उषा।

स्वर—कोकिल, वीणा।

चिबुक—अधखिली कली।

कान—मन के मन्त्री और मित्र, सीप, पुष्प।

ग्रीवा—कपोत, शंख, सुराही।

भुजा—मृणाल, कंचन की डाल।

सुखद—विद्वान् पुत्र, पतिव्रता-स्त्री, विद्या, नीरोग शरीर धन और मित्र का मिलन आदि।

दुःखद—पाप, पराजय, झूठ, हठ, मूर्ख मित्र, कुरूपता क्रोधी स्वभाव, व्याधि, अपमान ऋण, बुरा स्वामी, बुरे गाँव निवास, कुलटा स्त्री, परतन्त्रता, दरिद्रता, शत्रु आदि।

मन्दगति—हंस, हाथी, पतिव्रता स्त्री की हँसी औ बुद्धिमानों का विनोद आदि।

शीतल—मलय-मारुत, घनसार, चन्द्रमा, जल, हिम, शीत कमल, मृदुवाणी आदि।

तप्त—शत्रु का प्रताप, दुर्वचन, विरह, सूर्य, अग्नि, तृष्ण पाप आदि।

सुस्वर—कलरव, कोकिला, मोर, हंस, वीणा, बाँसुरी मैना आदि।

कुस्वर—उलूक, भैंस, बकरा, कौवा, गधा, कुत्ता, सिया आदि।

मधुर—चन्द्रमा की किरन, माखन, दाख, कवि की युक्ति मिश्री, ऊख, अमृत, बालक की बातें, स्त्री का आकार आदि।

बली—वायु, हनुमान, भीम, बालि, बलदेव, सिंह, हाथी सती, गरुड़, देव, काल आदि।

नखशिख

केश—घटा, मरकत के सूत, साँप, अंधकार के ता सेवार, भ्रमर।

वेणी—साँपिनी।

माँग—कज्जल के कूट पर दीप-शिखा, श्याम घनमण्डल में दामिनी, कसौटी पर कंचन की लीक अंधकार के हृदय में प्रकाश का धारा, ढाल पर कामदेव की दुधारी तलवार।

अलक—साँपिनी, भ्रमरावली, श्यामघटा।

मुख—कमल, दर्पण, चन्द्र।

ललाट—अर्द्धचन्द्र, स्वर्ण की पट्टी।

भृकुटी—लता, धनुष, खड्ग, पताका, पल्लव।

नेत्र—चकोर, मीन, मृग, खजन, कमल, भ्रमर, कामशर।

कपोल—दर्पण, गुलाब।

कपोल का तिल—सुधासर में नील कमल, चन्द्र पर सिंधु-पङ्क कमल में अलि दर्पण पर मोरचा।

शीतला के दाग—दृष्टि गड जाने के चिन्ह।

दाँत—मोती, मणि, कुन्दकली, अनार के दाने, हीरा।

नासिका—तोता, तिल प्रसून, किंशुक।

अधर—विम्बाफल, मूँगा, लाल फूल।

रसना—षट्रस की कसौटी।

मुखवास—चन्दन, चमेली, बकुल, कमल की सुगंध।

हास्य—कौमुदी, बिजली, सुधा, प्रकाश, उषा।

स्वर—कोकिल, वीणा।

चिबुक—अर्धखिली कली।

कान—मन के मन्त्री और मित्र, सीप, पुष्प।

ग्रीवा—कपोत, शंख, सुराही।

भुजा—मृणाल, कंचन की डाल।

कर—कमल।

कुच—चक्रवाक, कमल, कुम्भ, श्रीफल, अनार, हाथी का मस्तक, उलटे नगाड़े, पर्वत, कामदेव के तम्बू, मुनि, नारंगी, काम के खिलौने, यौवन-रत्न के सम्पुट।

पीठ—सोने की पट्टी, सोने के केले का पत्ता।

रोमावली—लता।

त्रिवली—नदी तरंग।

कटि—सिंह की कटि, ब्रह्म के समान निराकार कटि।

नितम्ब—चक्र, मदन-सरोवर के पुलिन।

जंघा—हाथी की सूँड़, केला।

चरण—कमल, पल्लव।

एँड़ी—विद्रुम, बिम्बा, बधूक, जपा, गुललाला, गुलाब।

अँगुली—पद-पद्म रूपी निपंग में कामदेव के शर।

नख—उडगण, चन्द्रमा, हीरा, मोती, पुष्प।

अंग-दीप्ति—सोना, केसर, चम्पा, कमल, चपला।

सम्पूर्ण अंग—कनकलता, दीपशिखा, चन्द्रकला।

महापुरुष—वृषभ, दीप, स्तम्भ, गिरि, गज, सिंह, सागर, कुम्भ।

पुरुष के अंग—कन्धा वृषभ के समान, स्वर सिंह के समान, वक्ष शिला के समान।

दोष

कविता को दोषों से मुक्त रखना बड़ा आवश्यक है। एक भी दोष सारे गुणों पर पानी फेर देता है। यहाँ हम संक्षेप से

कुछ दोषों का वर्णन करते हैं। कविता में उनसे सदा बचते रहने का प्रयत्न करना चाहिये।

१—स्वभाव विरुद्ध कोई बात न कहनी चाहिये। जैसे—

"मुख-मयङ्क अवलोकि के, विकसा मानस-कञ्ज"

यहाँ मुख रूपी चन्द्रमा को देखकर मनरूपी कमल का विकसना स्वभाव-विरुद्ध बात है। चन्द्रमा को देखकर कमल सकुचता है, विकसता नहीं।

अथवा—

"दामिनि सी कामिनि खड़ी, गजगामिनि सुकुमारि"

इसमें गजगामिनी की मन्दगति और दामिनी की चपलता परस्पर विरुद्ध गुण हैं। एक ही समय में एक ही पात्र में दो विरुद्ध गुणों का होना दोष है।

२—किसी चरण में मात्राओं की या वर्णों की कमी या अधिकता न होनी चाहिये। जिस छन्द का जो नियम है, उसका अच्छी तरह पालन होना चाहिये। मात्रा या अक्षरों की न्यूनता या अधिकता जीभ झट बतला देती है। इसलिये किसी छन्द को बार-बार पढ़ने से उसकी त्रुटि आप से आप खटकने लगती है।

३—पद्य में जो बात कही जाय, उसमें कुछ विशेषता या चमत्कार अवश्य होना चाहिये। चमत्कार-हीन कविता केवल तुकबन्दी है। उससे कुछ लाभ नहीं।

"कमला थिर न "रहीम" कहि, यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की बधू, क्यों न चंचला होय॥

देखिये, इस दोहे में लक्ष्मी की अस्थिरता का वर्णन करते हुए वृद्ध-विवाह की कैसी दिल्लगी उड़ाई गई है।

४—पदों में निरर्थक शब्दों की भरती नहीं करनी चाहिये। अपने-अपने स्थान पर शब्द पूरे जोरदार होने चाहिये। सु, अ आदि उपसर्गों की भरमार में कवि के शब्द-कोष की कमी मालूम होती है।

५—शब्द कर्ण-कटु न हों।

६—वर्णन में देशाचार की विरुद्धता न पाई जाय। जैसे महाराष्ट्र स्त्रियों के लिये यह कहना कि वे घूँघट काढ़कर चलती हैं, बिलकुल असत्य बात है।

७—जो बात एक बार कही जा चुकी हो, उसी को फि दुहराना पुनरुक्ति दोष है। इससे बचना चाहिये। जैसे—"घे है नभ घन-घटा, गरजन करत पयोद"। अथवा—वायस पालि अति अनुरागा। होय निरामिष कबहुँ कि कागा॥ यहाँ घ और पयोद तथा वायस और काग का एक ही अर्थ दोनों चरणों में आना दोष है।

८—जैसा समय हो वैसी ही उपमा देनी उचित है। कोई पुरुष यदि हाथी पर चढ़कर विवाह करने जा रहा हो तो उस समय उसके बल का महत्त्व दिखाने के लिये काल की उपमा कितनी अनुचित है। परन्तु युद्ध में उसी पुरुष के लिये कहा जा सकता है कि वह शत्रुओं में काल के समान विचरण कर रहा है।

९—किसी चरण के अन्तिम शब्द के कुछ अक्षर यदि

उसके आगे वाले चरण में पढ़े जायँ तो यह यति-भंग दोष कहलाता है।

जैसे—

"हर हरि केशव मदन मो, हन घनश्याम सुजान"

इसमें "मोहन" का "मो" तो पहले चरण में और "हन" दूसरे चरण में है। यह दोष है। कविता में यति-भंग होने से कभी कभी अर्थ का अनर्थ हो जाता है।

१०—अर्थ विरुद्ध शब्दों का प्रयोग न करना चाहिये। जैसे—

"रिपु मारो संग्राम में, उठो अहिंसक वीर"

यहाँ अहिंसा और शत्रु का मारना इन दोनों के अर्थ में विरुद्धता है। अतएव इन दोनों का संयोग ठीक नहीं।

११—जो कुछ कहा जाय, वह ऐसा हो कि समझ में आ जाय। किसी अन्य प्रसंग में कोई दूसरी बात न घुसेड़ देनी चाहिये।

१२—शब्दों और उनके अर्थों के क्रम पर भी ध्यान रखना चाहिये। जैसे—

"अमी हलाहल मद भरे, श्वेत श्याम रतनार।
जियत मरत झुकिझुकि परत, जेहि चितवत इक बार॥"

इस दोहे में अमृत विष और मदिरा का रूप और गुण क्रम से कहा गया है।

१३—लोक रीति और शास्त्रीय नियमों के विरुद्ध यदि कुछ

व्रजभाषा के छंदों मे बहुधा दीर्घ को ह्रस्व भी पढना पडता है। जैसे—"कैसे कै आवै कहा करै बीर ! विचारे बटोहिन दोष कहा है"। इसमे पिङ्गल के अनुसार "से" "कै" "वै" "रै" "रे" को ह्रस्व होना चाहिए।

इन सब सुविधाओं के द्वारा व्रजभाषा मे यह विशेषता पाई जाती है कि उसके छोटे-छोटे पदों मे भी बडे-बडे भावों का समावेश किया जा सकता है। परन्तु उतने ही भावों के प्रकट करने के लिये खडी बोली के कई पद खर्च करने पडते है।

व्रजभाषा मे चाहे जितनी विशेषता हो, परन्तु खडीबोली की कविता का प्रचार दिन-दूना रात-चौगुना बढ रहा है, वह रुक नही सकता। ऐसी दशा मे खडीबोली की कविता ही को सरस और सुगम बनाने की चेष्टा करनी चाहिये।

कविता मे भाव अच्छा होना चाहिये। भाव अच्छा हो तो भाषा की त्रुटि खटकती नही। उर्दू-कवियों ने अपनी कुल कविता खडीबोली मे की है। यद्यपि उनकी भाषा विशुद्ध खडीबोली नही कही जा सकती, क्योंकि उसमें अनेक स्थानों पर ह्रस्व को दीर्घ और दीर्घ को ह्रस्व पढना पडता है, परन्तु उन्होंने खोज खोज कर ऐसे भाव भरे हें कि पढते समय उनकी भाषा की त्रुटियों पर ध्यान ही नहीं जाता। आजकल की हिन्दी-कविता मे सरस और मनोहर भावों की तो बहुत कमी होती है। ऐसी दशा मे भाषा भी विशुद्ध न हो, तो पढनेवालों का मनोरञ्जन किस प्रकार से होगा। भाव अ

तम हो और भाषा भी विशुद्ध हो, तभी कविता का गौरव। यह गुण संस्कृत-कविता ही में देखने में आता है। सम्भव उन्नति होते होते खड़ीबोली की कविता को भी यही यश प्त हो जाय।

रस, गुण, छन्द

रस का साधारण अर्थ है स्वाद। पाठक या श्रोता के हृदय वासना रूप से स्थित हर्ष, शोक, भय, विस्मय, हास आदि व कवि की चमत्कार-युक्त वाणी से जागृत होते हैं, तब उसे क अपूर्व आनन्द का अनुभव होने लगता है। वह आनन्द सा अद्भुत होता है कि मन उस समय उसी में लीन हो जाता है। जैसे, योगी ब्रह्मानन्द-सुधा के पान से मस्त हो जाता है और अन्य विषय-व्यापार भूल जाता है। वैसा ही आनन्द काव्य से सहृदय मनुष्य के हृदय में उत्पन्न होता है। उसी अलौकिक आनन्द को रस कहते हैं। जब विभाव, अनुभाव और सचारी भाव से स्थायी भाव व्यक्त होता है तब रस की उत्पत्ति होती है।

जिससे भावना स्पष्ट हो, वह विभाव कहलाता है। विभाव दो प्रकार का होता है, आलम्बन और उद्दीपन। जिसके आश्रय से रस की स्थिति हो, उसे आलम्बन और जिससे रस का उद्दीपन होता है, उसे उद्दीपन विभाव कहते हैं। जिन चिह्नों के द्वारा रस का अनुभव होता है, उन्हें अनुभाव कहते हैं। अनुभाव भाव का कार्यरूप है। हास्य, मधुर सम्भाषण और

को ओजगुण कहा जाता है। और जो शब्द-योजना और समास मनोहर हो और सुनते ही जिनका अर्थ समझ में आ जाय, उनमे प्रसाद गुण कहा जाता है।

काव्य की भाषा सदा अर्थ का अनुसरण करती हुई होनी चाहिए। शृङ्गार, करुण, हास्य और शांतरस के वर्णन मे माधुर्य गुण-युक्त भाषा का और अद्भुत, वीर, रौद्र, भयानक और वीभत्स रस मे ओजगुण-युक्त भाषा का प्रयोग करना चाहिये। चन्द और भूषण की कविता में ओजगुण की अच्छी बहार देखने को मिल सकती है। प्रसाद की आवश्यकता तो सब रसों में रहती है। प्रसाद-गुण से रहित काव्य को तो काव्य कहना ही न चाहिये।

काव्य का माधुर्य देखना हो तो जयदेव-रचित गीतगोविन्द देखिए—

उन्मदमदनमनोरथ पथिकवधूजनजनितविलापे।
अलिकुलसंकुलकुसुमसमूहनिराकुलबकुलकलापे॥

कितनी मधुर शब्द-योजना है! कितना सरस प्रवाह है!

❀ ❀ ❀

हिन्दी कविता में भी माधुर्य-गुण खूब है। देखिये—

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि।
कहत लखन सन राम हृदय गुनि॥

❀ ❀ ❀

कबहुँक हौं इहि रहनि रहौंगो।
परहित निरत निरंतर मन क्रम वचन नेम निबहौंगो॥

परुष वचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
विगत मान सम सीतल मन परगुन अवगुन न कहौंगो।
परिहरि देह-जनित चिंता दुख सुख समबुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु इहि पथ रहि अविचल हरिभक्ति लहौंगो।

यह तो गुणों की बात हुई। काव्य में दोष का भी वि
बहुत आवश्यक है। शब्द-दोष, अर्थ-दोष, रस-दोष, आदि
प्रकार के दोष हैं। श्रुति-कटुत्व, अश्लीलता, ग्राम्यता, अप्रसिद्ध
संदिग्धता, क्लिष्टता, पुनरुक्ति, छन्दोभग, यतिभग आदि दोष
बचना चाहिए।

रस के सहायक छन्द भी है। मदाक्रान्ता, द्रुतविलम्बि
शिखरिणी और मालिनी छन्द मे शृङ्गार, शान्त और क
रस अधिक मनोहर होजाते हैं। भुजगप्रयात, वशस्थ
शार्दूलविक्रीडित में वीर, रौद्र और भयानक रस वि
प्रभावोत्पादक होजाते हैं। हिन्दी-छन्दों मे सवैया और बर
शृङ्गार, करुण और शान्त रस, छप्पै मे वीर, रौद्र और भय
रस, घनाक्षरी, दोहा, चौपाई और सोरठा में प्राय सभी
उद्दीप्त होते हैं। सवैया और बरवै मे वीररस का काव्य
हो जायगा। काव्य मे विरोधी और सहायक रसों का भी
रखना चाहिए। वीर या रौद्ररस के वर्णन मे शृङ्गार,
और करुण रस की उपस्थिति से रस की सिद्धि नह
सकती। हास्यरस से शृङ्गार रस वृद्धि पाता है। पर वीर
भयानक और करुण रस से उसकी सिद्धि मे बाधा पहुँ
है। हास्यरस करुणरस का घातक है। कवि ही नहीं, अच्छे

भी रसों के शत्रुओं और मित्रों की जानकारी से अपने विषय को बहुत प्रभावोत्पादक बना लेते हैं।

आगे यह विषय अधिक स्पष्ट कर दिया जाता है—

संख्या	रस	रस के मित्र	रस के शत्रु
१	शृङ्गार	हास्य, अद्भुत।	करुण, वीभत्स, रौद्र, वीर, भयानक।
२	हास्य	शृङ्गार, अद्भुत।	भयानक, करुण, वीर।
३	अद्भुत	भयानक।	रौद्र।
४	शांत	करुण।	वीर, शृङ्गार, रौद्र, हास्य, भयानक।
५	रौद्र	भयानक।	हास्य, शृङ्गार, अद्भुत।
६	वीर	रौद्र।	शान्त, शृङ्गार।
७	करुण	शांत।	हास्य, शृङ्गार।
८	भयानक	अद्भुत, रौद्र, वीर।	शृङ्गार, हास्य, शांत।
९	वीभत्स		शृङ्गार।

(कविता-कौमुदी से)

अलङ्कार

काव्य में अलंकार की भी आवश्यकता है। केशवदास ने कहा है—

भूषन विना न सोहई, कविता, वनिता, मित्र।

गुण और अलंकार में भेद है। गुण रस के बिना नहीं रहते, पर अलंकार रस के बिना भी रह सकते हैं। अलंकार

रस के सहायक होते हैं। शब्द और अर्थ में उत्कर्ष प्र
करके वे रस की वृद्धि करते हैं। पर जहाँ रस नहीं, वहाँ के
अलकार भी उक्ति मे वैचित्र्य उत्पन्न कर देते हैं।

गद्य और पद्य में जहाँ विशिष्ट शब्दों के प्रयोग से श
और अर्थ मे कोई चमत्कार उत्पन्न होता है, उसे अलकार क
हैं। अलंकार सचमुच कविता के अलकार (भूषण) हैं। यद्य
अलंकार के बिना भी रस और गुण की सहायता से कवि
प्रभावोत्पादक हो सकती है, पर रस के साथ अलकार भी
तो कविता की आकर्षण-शक्ति बहुत अधिक होजाती है।

अलङ्कार के मुख्यत तीन भेद माने गये हैं—शब्दालङ्का
अर्थालङ्कार, और उभयालङ्कार। इन तीनों के बहुत से उप
हैं, जिनकी सख्या सौ से भी अधिक है। हिन्दी में अलङ्कारों
परम्परा सस्कृत-साहित्य से चलती है। इसलिये इनके नाम
वही हैं, जो सस्कृत में हैं।

सब अलकारों की जानकारी के लिये अलङ्कार का के
बडा ग्रन्थ देखना चाहिये। फिर भी यहाँ थोडे मे बहुत प्रसि
अलङ्कारो का साधारण परिचय दे दिया जाता है। इनके ज्ञा
से पद्यो में बहुत कुछ सरसता लाई जा सकती है।

शब्दालङ्कार

शब्दालङ्कार के मुख्य भेद ये हैं—अनुप्रास, यमक, पुनरुक्त
वदाभास, श्लेष, चित्र, प्रहेलिका इत्यादि। इनमे से हरएक
उदाहरण आगे दिये जाते हैं—

अनुप्रास—भिन्न-भिन्न पदों मे जहाँ एक ही प्रकार के स्वर वाले अक्षर या पद बार-बार आवें, वहाँ अनुप्रास कहलाता है। जैसे—

कंकन किंकिन नूपुर धुनि सुनि।
कहत लखन सन राम हृदय गुनि॥

इसमें नकार बार-बार आया है। इसलिये यह बहुत श्रुति-मधुर होगया है। और धुनि, सुनि, गुनि और कंकन, लखन, मन मे भी स्वर और अक्षर मे समानता पाई जाती है। यह अनुप्रास है। अनुप्रास को तुक भी कहते हैं।

यमक—जहाँ एक ही शब्द बार-बार आवे, परन्तु अर्थ भिन्न भिन्न हों, वहाँ यमक कहलाता है। जैसे—

सुमन में न सुगन्ध समायगी,
पवन में वन में भर जायगी।

इसमें 'पवन में' और 'वन मे' यमक है।

या

वर जीते मर मैन, के,
ऐसे देखे मैं न।
हरिनी के नैनान तें,
हरिनो के ये नैन॥

इसमे 'मैन' और 'हरिनी के' में यमक है।

पुनरुक्तवदाभास—देखने में जहाँ एक ही अर्थवाले, पर वास्तव में भिन्न अर्थवाले पद या शब्द बार-बार आवें, वहाँ पुनरुक्तवदाभास-अलङ्कार होता है। जैसे—

भव भव विभव पराभव कारिनि ।
विस्व विमोहनि स्ववस विहारिनि ॥

इसमें 'भव' शब्द के दो अर्थ हैं, पर देखने में एक शब्द बार-बार आया हुआ जान पड़ता है । इससे पुनरुक्तवदाभास-अलङ्कार कहा जायगा ।

श्लेष—जहाँ एक शब्द, पद या पद-समूह के कई निकलते हों, वहाँ श्लेष-अलङ्कार होता है । जैसे—

बल प्रताप वीरता बड़ाई ।
नाक पिनाकहि सग सिधाई ॥

यहाँ नाक के दो अर्थ हैं—नाक और लज्जा ।

या

बहुरि सक्र सम बिनवउँ तेही ।
सतत सुरानीक प्रिय जेही ॥

इसमें सुरानीक शब्द में श्लेष है—सुर+अनीक= की सेना और सुरा+नीक=सुरा जिसको अच्छी ल

या

दई दई क्यों करत है,
दई दई सु कबूल ।

इसमें 'दई दई' में श्लेष है । 'दई दई' और दई का अर्थ दैव (ईश्वर) तथा 'दिया' भी

चित्र

जहाँ पदों में ऐसे समान स्वर वाले

की योजना की जाय कि उससे अनेक चित्र और मनोरञ्जक कवितायें बन जायँ, वहाँ चित्रालङ्कार कहलाता है।

चित्रालङ्कार कई प्रकार के होते हैं। जैसे—कमलवन्ध, धनुषबन्ध, चामरबन्ध, सर्वतोभद्रगति, कामधेनु, अन्तर्लापिका, बहिर्लापिका, दृष्टिकूटक, एकाक्षर, निरोष्ठ इत्यादि।

एक उदाहरण

आन मान निन मान जिन, ठान मान अनजान।
मीन हीन धन दीन तन, छीन प्रान मन जान॥

आ	मा	नि	मा	जि	ठा	मा	अ	जा
न	न	न	न	न	न	न	न	न
मी	ही	ध	दी	त	छी	प्रा	म	जा

इस दोहे से कमलवध आदि कई चित्र बन सकते हैं।

प्रहेलिका (पहेली)

बीसों का सिर काट लिया।
ना मारा ना खून किया।

इसमें प्रहेलिका और अन्तर्लापिका दोनों का रूप 'नाखून' से प्रकट है।

इसी प्रकार एकाक्षर छंद में एक ही अक्षर आदि से तक रहता है। संस्कृत काव्यों में इसके बहुत से हैं पर हिन्दी में केशवदास की कविप्रिया में भी हैं।

निरोष्ट मे ऐसे शब्दों का व्यवहार किया जाता है, जिसमे पवर्ग नहीं आता। अर्थात् जिसे पढते समय ओंठ आपस में नहीं मिलते। जैसे—

चचल खजन भखन से,
दीह जलज-दल ऐन।
अनियारे असरीर के,
तीर तिहारे नैन॥

इस प्रकार शब्दानुप्रास से कविता मे तरह-तरह के चमत्कार दिखाये जा सकते हैं। उनसे श्रोताओं का मनोरजन तो होता ही है, कवि के शब्द-भाडार का महत्व भी प्रकट होता है।

अर्थालंकार

जिसके द्वारा अर्थ में चमत्कार आता है उसे अर्थालकार कहते हैं। इसके सैकडो भेद हैं, जिनमें से मुख्य ये है—

उपमा, रूपक, अनन्वय, उपमेयोपमा, प्रतीप, परिणाम, उल्लेख, स्मरण, भ्रान्ति, सन्देह, अपन्हुति, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, तुल्ययोगिता, दीपक, दृष्टात, प्रतिवस्तूपमा, निदर्शना, व्यतिरेक, सहोक्ति, विनोक्ति, परिकर, अर्थश्लेप, अप्रस्तुतप्रशसा, पर्यायोक्ति, व्याजस्तुति, आक्षेप, विरोध, विभावना, विशेपोक्ति, असभव, असगत, विपम, सम, विचित्र, अधिक, अल्प, विशेप, व्याघात, कारणमाला, एकावली, सार, यथासख्य, पर्याय, परिवृत्ति, परिसख्या, विकल्प, समुच्चय, समाधि, प्रत्यनीक, काव्यार्थापत्ति, काव्यलिंग, अर्थान्तरन्यास, विकस्वर, प्रौढोक्ति, सभावना, मिथ्याध्यवसित, ललित, प्रहर्षण, विपादन, उल्लास, अवज्ञा,

अनुज्ञा, तिरस्कार, लेश, मुद्रा, रत्नावली, तद्गुण, पूर्वरूप, अतद्गुण, अनुगुण, मीलित, सामान्य, उन्मीलित, विशेषक, उत्तर, सूक्ष्म, पिहित, व्याजोक्ति, गूढोक्ति, युक्ति, लोकोक्ति, वक्रोक्ति, स्वभावोक्ति, भाविक, उदात्त, अत्युक्ति, निरुक्ति, प्रतिशोध, विधि, हेतु, प्रमाण इत्यादि।

स्थानाभाव से उपर्युक्त सभी अलकारो के लक्षण और उदाहरण यहाँ नहीं दिये जा सकते और न यह इस पुस्तक का प्रधान विषय ही है। केवल थोडे से अलकारों के लक्षण और उदाहरण यहाँ दे दिये जाते हैं जो आसानी से समझ मे आ जाते हैं और कविता में जिनका प्रयोग भी साधारणत. अधिक होता रहता है।

उपमा

दो वस्तुओ में जहाँ आकृति, गुण और दशा में समानता पाई जाती है वहाँ उपमालकार होता है। इसको स्पष्ट करने के लिये तुल्य, समान, सम, सदृश, यथा, ज्यों, इव, सी, से, सों, लों आदि समानार्थवाची शब्द आते हैं। जैसे—

साधु चरित सुभ सरिस कपासू।
निरस विसद गुनमय फल जासू॥
खल सन इव पर बन्धन करई।
खाल कढाइ विपति सहि मरई॥

इसमे पहली चौपाई में सन्त की उपमा कपास से दी गई है। दूसरी चौपाई मे खल की उपमा सन से दी गई है। दोनों में सरिस और इव शब्द उपमा-बोधक आये हैं।

उपमा के पूर्णोपमा, लुप्तोपमा, मालोपमा, लक्ष्योपमा, ललितोपमा, रसनोपमा, समुच्चयोपमा, उपमेयोपमा आदि कई भेद हैं।

पूर्णोपमा

जिसमे उपमेय, उपमान, उपमा-वाचक शब्द और गुण ये चारों अग स्पष्ट हों, उसे पूर्णोपमा कहते हैं। जैसे—

फूलि उठे कमल से अमल हितू के नैन,
कहै रघुनाथ भरे वैन रस सियरे।
दौरि आये भौंर से गुनीजन करत गान,
सिद्ध से सुजान सुखसागर मों नियरे।
सुरभी-सी खुलन सुकवि को सुमति लागी,
चिरिया-सी जागी चिन्ता जनक के जियरे।
धनुष पै ठाढे राम रवि से लसत आज,
भोर के से नखत नरिन्द भये पियरे॥

इसमे नैन, राम, गुनीजन आदि उपमेय, कमल, रवि, भौंर आदि उपमान, फूलि उठे, लसत और दौरि आये साधारण धर्म, से, मे, से उपमा वाचक शब्द हैं। अतएव यह पूर्णोपमा है।

लुप्तोपमा

उपमा के चारो अगो मे से जहाँ एक वा दो वा तीन अग लुप्त हों, वहाँ लुप्तोपमा अलकार कहलाता है। इसके आठ अग हैं। जैसे—धर्मलुप्ता, वाचक लुप्ता, उपमान लुप्ता, धर्मवाचक लुप्ता, वाचकोपमेय लुप्ता, धर्मोपमेय लुप्ता, वाचको-

पमान लुप्ता और धर्मोपमानवाचक लुप्ता। यहाँ केवल एक का उदाहरण दिया जाता है—

यदपि सरित संसार में,
सत सहस्र परिमान।
पै पतितन पाथोधि कहँ,
सुरसरि सरिस न आन॥

इसमें सुरसरि उपमेय और सरिस वाचक तो है, पर दूसरे नदी-नद उपमान और उद्धारकर्ता आदि धर्म का लोप है।

मालोपमा

जहाँ एक उपमेय के बहुत से उपमान हों, वहाँ मालोपमालकार होता है। इसके दो भेद हैं—भिन्नधर्मा, अभिन्नधर्मा। यहाँ दोनों के उदाहरण दिये जाते हैं—

भिन्नधर्मा

बैनतेय बलि जिमि चह कागू।
जिमि शश चहै नाग अरि भागू॥
जिमि चह कुसल अकारन कोही।
सुख सम्पदा चहै सिव-द्रोही॥
हरिपद विमुख परमगति चाहा।
तिमि तुम्हार लालच नर नाहा॥

इसमें कई असम्भव बातों से लालच की तुलना की गई है।

अभिन्नधर्मा

कीरति तिहारी राम कहा कहै हनुमान,
दसो दिसि दिव्य दीह दीपति अकेली सी।

भोडर सी भूपन सी भानु सी भगीरथी सी,
भारती सी भव सी भवा सी भुज वेली सी।
कुद सी कविन्द सी कुमुद सी कपूरिका सी,
कजन की कलिका कलपतरु केली सी।
चपला सी चक्र सी चमर सी औ चन्दन सी,
चन्द्रमा सी चाँदनी सी चाँदी सी चमेली सी॥
हनुमान

यहाँ राम की कीर्ति की तुलना कई सफेद रग की वस्तुओं से की गई है।

ललितोपमा

जहाँ उपमेय और उपमान को स्पष्ट करने के लिये 'चुराता है, निन्दा करता है, हँसता है, होड करता है तथा शत्रु, सुहृद,' आदि शब्द आते हैं, वहाँ ललितोपमा अलकार होता है। जैसे—

करि की चुराई चाल सिंह की चुराई लक,
ससि को चुरायो मुख नासा चोरी कीर की।
पिक के चुराये बैन मृग के चुराये नैन,
दसन अनार हाँसी बीजरी गँभीर की।
कहैं कवि वेनी वेनी व्याल की चुराइ लीन्हीं,
रती रती शोभा सब रति के सरीर की।
अब तो कन्हैयाजू को चित्त हू चुराइ लीन्हों,
चोरटी है, गोरटी वा छोरटी अहीर की॥
वेनी

उल्लेख

एक ही वस्तु को जहाँ भिन्न भिन्न लोग अनेक प्रकार से देखे वहाँ उल्लेखालंकार होता है। जैसे—

जनक जाति अवलोकहिं कैसे।
सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे॥
सहित विदेह विलोकहिं रानी।
सिसु सम प्रीति न जाइ बखानी॥

तुलसीदास

उत्प्रेक्षा

जहाँ दूसरी वस्तु में किसी अन्य वस्तु की संभावना की कल्पना की जाय, वहाँ उत्प्रेक्षालङ्कार होता है। इसके वाचक शब्द मानो, जानो, मेरे, जान, जनु, मनु आदि हैं।

इसके मुख्य तीन भेद हैं—वस्तूत्प्रेक्षा, हेतूत्प्रेक्षा, फलोत्प्रेक्षा।

उदाहरण—

लता भवन ते प्रगट भै,
तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग बिमल बिधु,
जलद पटल बिलगाइ॥ तुलसीदास

इसमें दोनों भाइयों और लता-भवन के लिये दो चन्द्रमा 'जलद-पटल' की संभावना की कल्पना की गई है। 'जनु' वाचक है।

अतिशयोक्ति

की अत्यन्त प्रशंसा के लिये कोई बात

यहाँ सिंह के चार धर्मो मे उपमेय की समता की गई है।

अनन्वय

जहाँ एक ही वस्तु उपमान और उपमेय दोनों का काम दे, वहाँ अनन्वयालङ्कार होता है। जैसे—

राम के समान राम ही हैं।

प्रतीप

जहाँ उपमान का वर्णन उपमेय के समान किया जाता है वहाँ प्रतीप अलङ्कार होता है। जैसे—

पाहन जिय जनि गर्व करि,
हौं ही कठिन अपार।
चित दुर्जन के देखिये,
तोसे लाख हजार ॥ अलङ्कार-प्रकार

प्रतीप के पाँच भेद हैं।

रूपक

जहाँ उपमेय और उपमान मे कुछ भेद न वर्णन किया जाय, वहाँ रूपकालङ्कार होता है। जैसे—

नव विधु विमल तात जस तोरा।
रघुवर किंकर कुमुद चकोरा ॥ तुलसीदास

रूपक के दो भेद हैं—अभेद और तद्रूप।

परिणाम

जहाँ उपमान ही उपमेय हो, वहाँ परिणाम अलंकार होता है। जैसे—

हैं ब्रजचंद पै तेरो चकोर हैं।

उल्लेख

एक ही वस्तु को जहाँ भिन्न-भिन्न लोग अनेक प्रकार से देखें वहाँ उल्लेखालंकार होता है। जैसे—

जनक जाति अवलोकहिं कैसे।
सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे॥
सहित विदेह विलोकहिं रानी।
सिसु सम प्रीति न जाइ बखानी॥

तुलसीदास

उत्प्रेक्षा

जहाँ दूसरी वस्तु में किसी अन्य वस्तु की संभावना की कल्पना की जाय, वहाँ उत्प्रेक्षालङ्कार होता है। इसके वाचक शब्द मानो, जानो, मेरे, जान, जनु, मनु आदि हैं।

इसके मुख्य तीन भेद हैं—वस्तूत्प्रेक्षा, हेतूत्प्रेक्षा, फलोत्प्रेक्षा।

उदाहरण—

लता भवन ते प्रगट भे,
तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग विमल विधु,
जलद पटल बिलगाइ॥ तुलसीदास

इसमें दोनों भाइयों और लता-भवन के लिये दो चन्द्रमा और 'जलद-पटल' की सभावना की कल्पना की गई है। 'जनु' उत्प्रेक्षाबोधक है।

अतिशयोक्ति

जहाँ किसी वस्तु की अत्यन्त प्रशंसा के लिये कोई बात

लोक-सीमा का उल्लघन करके कही जाय, वहाँ अतिशयोक्ति अलङ्कार होता है। जैसे—

अब जीवन कै है कपि आस न कोय।
कनगुरिया कै मुँदरी कगन होय ॥
तुलसीदास

इसमे कलाई की ऐसी दुर्बलता बताई गई है कि उसमें कनिष्ठिका अँगुली की अँगूठी कंगन की तरह पहनी जा सकती है। यह अतिशयोक्ति है।

तथा

क्या नज़ाकत है कि आरिज़ उनके नाले पड गये।
मैंने तो बोसा लिया था ख्वाब में तसवीर का ॥

इसमे ऐसी सुकुमारता का वर्णन है, जिस पर स्वप्न में किसी प्रेमी के चित्र के ओंठ का चुंबन करने से आघात पहुँच सकता है।

इसके रूपकातिशयोक्ति, भेदकातिशयोक्ति, अक्रमातिशयोक्ति, चञ्चलातिशयोक्ति, अत्यतातिशयोक्ति आदि कई भेद हैं।

विरोधाभासालकार

जहाँ विरोध न होने पर विरोध दिखाई दे, वहाँ विरोधाभासालङ्कार होता है। जैसे—

श्रीसरजा शिव तो जस सेत सों,
होत हैं वैरिन के मुँह कारे।
भूषन ते वे अरुन प्रताप,
सफेद लखे नृप सारे

साहि तनै तव कोप कृशानु ते,
बैरि गरे सब पानिप वारे।
एक अचभव होत बडो,
तिन ओंठ गहे तृण जात न जारे॥

इसमें सफेद से काला होना, लाल से सफेद होना, अग्नि से पानिपवालों का गलना और ओठों पर तृण लेने पर भी न जलना आदि विरोधी बातें हैं, पर वास्तव में विरोध नहीं है।

यथासंख्य

जहाँ वस्तुओं का वर्णन क्रम से किया जाय, वहाँ यथा-संख्यालंकार होता है। जैसे—

अमिय हलाहल मद भरे,
सेत स्याम रतनार।
जियत मरत झुकि झुकि परत,
जेहि चितवत इक बार॥

इसमें अमृत, विष और मदिरा के रंगों और उनके गुणों का क्रमश वर्णन है।

लोकोक्ति

लोक में जो कहावतें प्रचलित हैं, उसका नाम लोकोक्ति है। जैसे—

दुख सुख सब कहँ होत है,
पौरुष तजहु न मीत।
'मन के हारे हार है,
मन के जीते जीत॥'

दृष्टांत

जहाँ उपमेय और उपमा दोनों वाक्यों का अर्थ विम्ब, प्रतिविम्ब भाव से कहा जाता है, वहाँ दृष्टांत अलकार होता है। जैसे—

सिव औरंगहि जिति सकै,
और न राजा राव।
हत्थि मत्थ पै सिंह विन,
आन न घालै घाव॥

वक्रोक्ति

जहाँ कहने का ढग कुछ और हो और अर्थ उसका कुछ और हो, वहाँ वक्रोक्ति अलकार होता है। जैसे—

मैं सुकुमार नाथ वन जोगू।
तुमहिं उचित तप मो कहँ भोगू॥

इसमें एक तरह का ताना है, इसे वक्रोक्ति कहते हैं।

व्याज-स्तुति

जहाँ निन्दा के शब्दो में स्तुति और स्तुति के शब्दों मे निन्दा प्रकट हो, वहाँ व्याज-स्तुति अलकार होता है। जैसे—

एक दिये जहँ कोटिक होत हैं सो कुरुखेत में जाइ अन्हाइय।
तीरथराज प्रयाग वडे मन वाञ्छित के फल पाइ अघाइय॥
श्री मथुरा वसि केशवदासजू द्वै भुजते भुज चार ह्वै जाइय।
कासीपुरी की कुरीति बुरी जहँ देह दिये पुनि देह न पाइय॥
केशवदास

यहाँ 'काशी की कुरीति' कहकर निन्दा के शब्दों में मोक्ष की बात बताकर स्तुति की गई है।

विभावना

जहाँ किसी हेतु के बिना ही कार्य होने का वर्णन हो, वहाँ विभावना अलंकार होता है। जैसे—

साहितनै सिवराज की, सहज टेव यह ऐन।
अनरीझे दारिद हरै, अनखीझे अरि सैन॥

यहाँ रीझने और खीझने के बिना ही दरिद्रता और शत्रु सैन्य के नाश की बात कही गई है।

अर्थान्तरन्यास

कहे गये एक अर्थ के साथ जहाँ दूसरे प्रकार के अर्थ का —[illegible] माना जाय, वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है। जैसे—

बिना चतुरङ्ग सङ्ग बानरन लैके
बाँधि बारिधि को लंक रघुनन्दन जराई है।
पारथ अकेले द्रोन भीषम से लाख भट
जीति लीन्हीं नगरी बिराट में बड़ाई है।
भूषन भनत है गुसुलखाने में खुमान
अवरङ्ग साहिबी हथ्याय हरि लाई है।
तौ कहा अचंभो महाराज शिवराज सदा
बीरन के हिम्मतै हथ्यार होत आई है।

भूष

दृष्टांत

जहाँ उपमेय और उपमा दोनों वाक्यों का अर्थ बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव से कहा जाता है, वहाँ दृष्टांत अलंकार होता है। जैसे—

सिव औरंगहि जिति सकै,
और न राजा राव।
हत्थि मत्थ पै सिंह बिन,
आन न घालै घाव॥

वक्रोक्ति

जहाँ कहने का ढंग कुछ और हो और अर्थ उसका कुछ और हो, वहाँ वक्रोक्ति अलंकार होता है। जैसे—

मैं सुकुमार नाथ वन जोगू।
तुमहिं उचित तप मो कहँ भोगू॥

इसमें एक तरह का ताना है, इसे वक्रोक्ति कहते हैं।

व्याज-स्तुति

जहाँ निन्दा के शब्दों में स्तुति और स्तुति के शब्दों में निन्दा प्रकट हो, वहाँ व्याज-स्तुति अलंकार होता है। जैसे—

एक दिये जहँ कोटिक होत हैं सो कुरुखेत में जाइ अन्हाइय
तीरथराज प्रयाग बड़े मन वाञ्छित के फल पाइ अघाइय
श्री मथुरा बसि केशवदासजू द्वै भुजते भुज चार ह्वै जाइय
कासीपुरी की कुरीति बुरी जहँ देह दिये पुनि देह न पाइय
केशवदास

यहाँ 'काशी की कुरीति' कहकर निन्दा के शब्दों मे मोक्ष की बात बताकर स्तुति की गई है।

विभावना

जहाँ किसी हेतु के बिना ही कार्य होने का वर्णन हो, वहाँ विभावना अलकार होता है। जैसे—

सहितनै सिवराज को, सहज टेव यह ऐन।
अनरीझे दारिद हरै, अनखीझे अरि सैन॥

यहाँ रीझने और खीझने के बिना ही दरिद्रता और शत्रु-सैन्य के नाश की बात कही गई है।

अर्थान्तरन्यास

कहे गये एक अर्थ के साथ जहाँ दूसरे प्रकार के अर्थ का समर्थन माना जाय, वहाँ अर्थान्तरन्यास अलकार होता है। जैसे—

बिना चतुरङ्ग सङ्ग बानरन लैके
बाँधि बारिधि को लक रघुनन्दन जराई है।
पारथ अकेले द्रोन भीषम से लाख भट
जीति लीन्हीं नगरी बिराट में बड़ाई है।
भूषन भनत है गुसुलखाने मे खुमान
अवरङ्ग साहिबी हथ्याय हरि लाई है।
तौ कहा अचंभो महाराज शिवराज सदा
बीरन के हिम्मतै हथ्यार होत आई है।

भूषण

उभयालङ्कार

जहाँ शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार मिले रहते हैं, वहाँ उभयालङ्कार होता है। इसके दो भेद हैं—संसृष्टि और संकर।

संसृष्टि

'तिल-तंडुल-न्याय' से तिल और चावल की तरह कई अलंकार मिले हों, पर भिन्न भिन्न भान होते हों, वहाँ संसृष्टि अलंकार होता है। जैसे—

समर मरन, पुनि सुरसरि तीरा।
राम काज छन भगु सरीरा॥
भरत भाइ नृप मैं जन नीचू।
बडे भाग अस पाइय मीचू॥

इसमें 'रकार' की अधिकता से वृत्यानुप्रास है। समर में मरना धर्म, युद्ध के लिये यह एक भाव पर्याप्त होने पर भी सुरसरि का किनारा, और रामकाज आदि कई कारण मिलकर भाव को और प्रभावित कर रहे हैं, इसलिये यह समाधि है। रामकाज के लिये मृत्यु की चाहना अनुज्ञा है। इसी प्रकार कई अलंकार अलग-अलग लक्षित होने पर भी एक में मिल गये हैं, इससे यह संसृष्टि अलंकार है।

संकर

'नीर-क्षीर-न्याय' से दूध और पानी की तरह जहाँ कई अलङ्कार मिलकर एकाकार हो जाते हैं, वहाँ सङ्कर अलङ्कार होता है। जैसे—

श्री वृन्दावन! बसि ; बढ़ै , उर अनन्य अनुराग ।
करिय कृपा मोपर मिलै , प्रभु पद पद्म पराग ॥

इसमें 'पद' का यमक, तथा अर्थालङ्कार और वृत्ति अनुप्रास' आदि एक में मिल गये हैं ।

अलङ्कार के और भी कई भेद हैं । भाषा जैसे-जैसे परिमार्जित होती जाती है वैसे वैसे अलङ्कारों की संख्या घटती-बढ़ती रहती है और रूप भी बदलते रहते हैं ।

नौसिख पद्य-रचयिताओं के लिये कुछ सम्मतियाँ

कविता करना बहुत कठिन काम है । कवि को तर्क, व्याकरण, राजनीति, आत्मज्ञान, वैद्यक, ज्योतिष, वेद, इतिहास आदि लौकिक, पारलौकिक सब विषयों का ज्ञान सम्पादन करना चाहिये । कवियों को पद-पद पर इनसे काम पड़ता है । इनसे परिचय न रखने से कवि होना असाध्य है । किसी किसी में कविता-शक्ति स्वाभाविक होती है । ऐसे जन थोड़े ही अभ्यास से अच्छे कवि हो सकते हैं । जिनमें कवित्व-शक्ति बीज-रूप से नहीं रहती, उनके कवि बनने में बड़े परिश्रम की आवश्यकता होती है । यहाँ पर कुछ साधनों का, जिनके जान लेने से कविता बनाने में बहुत सहायता मिल सकती है, उल्लेख किया जाता है ।

कवि बनने की इच्छा रखनेवाले पुरुषों को किसी अच्छे साहित्य ज्ञाता कवि से, जो सरस हृदय, व्याकरण जाननेवाला तथा छन्दोंमर्मों का पूर्ण पारगामी हो, काव्य-शास्त्र का अध्ययन करना चाहिये । उनसे अच्छे अच्छे कवियों की चमत्कारपूर्ण

उक्तियों के विषय में चर्चा करनी चाहिए। प्रत्येक रस के आस्वादन से आनन्दित होना चाहिये। भले बुरे काव्यों के पहचानने की योग्यता प्राप्त करनी चाहिये। इतिहास का अध्ययन करना चाहिये। अभ्यास के लिये महाकवियों की शैली के अनुसार नये पद्य की रचना करनी चाहिये। पुराने कवियों के श्लोकों के पाद, पद, वाक्य आदि की जगह अपने बनाये पाद, पद, वाक्य रखकर अभ्यास बढाना चाहिये। तथा उनकी रचना मे कुछ फेरफार करके कुछ अपना कुछ उनका रखकर नवीन अर्थ के समावेश करने की चेष्टा करनी चाहिये।

कुछ कविता-शक्ति प्राप्त होजाने पर कवि को उचित है कि वह काव्य के और अगों का ज्ञान प्राप्त करे, सत्कवियों की संगति करे, समस्यापूर्ति करे, अन्य कवियो की कविताओं का पाठ किया करे, समालोचना की शक्ति उपार्जन करे, दूसरे की कविता के दोष और गुण को ध्यानपूर्वक विचार करे, अच्छे वेश मे रहा करे, नाटको का अभिनय देखा करे, गाना सुनने का शौक़ रक्खे, लोकाचार का ज्ञान प्राप्त करे, चित्रकारों और शिल्पियों के अच्छे-अच्छे चित्रों और शिल्पकार्यों का अवलोकन करे, इतिहास पढे, वीरों का युद्ध देखे, श्मशान और अरण्य में घूमे, प्रसन्नचित्त रहे तथा आर्त्तजनो के हर्ष-शोक-पूर्ण वचनो को सुने, प्राकृतिक दृश्य देखे, कल्पना-शक्ति को स्फुरित करने का प्रतिक्षण उद्योग करे। मतलब यह कि कविता में जो नवरस हैं, उनमें प्रत्येक का पूरा, नहीं तो थोडा-बहुत तो अवश्य ही ज्ञान प्राप्त करे। जिससे कविता करते समय जहाँ जिस रस के वर्णन

ो आवश्यकता हो, उसे वहाँ सरलता-पूर्वक उत्तमता से स्थान सके। इनके अतिरिक्त कवि के लिये कुछ और भी जानने ोग्य बातें हैं। जैसे प्राणियों के स्वभाव की परीक्षा करना, ाभी शोक न करना, सूर्य, चन्द्रमा और तारागण के स्थान ौर उनकी गति आदि का ज्ञान प्राप्त करना, सब ऋतुओं की वेशेषता और उनका भेद समझना, सभाओं में सम्मलित होना, दिन में कुछ सो लेना, फिर कुछ रात रहे उठकर कुछ कविता करना इत्यादि। एक बार लिखी हुई कविता को दो-तीन बार संशोधन करके उसे परिमार्जित कर लेना चाहिये।

सुकवि होने की इच्छा रखने वाले के लिये उचित है कि वह पराधीनता में न रहे, अपने उत्कर्ष पर गर्व करने और पराये उत्कर्ष के न सहने की आदत न डाले, दूसरे की श्लाघा सुनकर प्रसन्नता प्रकट करे और अपनी श्लाघा सुनकर संकोच करे, किसी उपयोगी बात के सीखने में, किसी की शिष्यता स्वीकार करने में सङ्कोच न करे, सन्तुष्ट और सदाचार से रहे, अश्लील बात मुँह से न निकाले, गम्भीरता धारण करे, दूसरे के द्वारा किये गये आक्षेपों को सुनकर क्रोध न करे और न किसी के सामने दीनता प्रकट करे।

कवि की कोई बात चमत्कार से खाली नहीं होनी चाहिये। चमत्कार या विलक्षणताहीन कविता से सुननेवाले को कुछ आनन्द प्राप्त नहीं हो सकता। कवि में चमत्कारोत्पादन शक्ति का अभाव कदापि न होना चाहिये।

कवि के लिये कविता विषयक गुण-दोषों का ज्ञान प्राप्त

करना भी अत्यन्त आवश्यक है। बिना इसके जाने किसी कवि की कविता निर्दिष्ट दोषों से रहित नहीं हो सकती।

कवि के लिए एकान्त स्थान बहुत उपयुक्त है। जहाँ किसी प्रकार का शोर-गुल न हो, आसपास कोई ऐसे पदार्थ न हों कि बार-बार ध्यान भङ्ग हो जाय, उसी शान्तिमय स्थान में सुख पूर्वक बैठकर कविता लिखनी चाहिये। जिस विषय पर कविता लिखनी हो, उसी विषय की कल्पना बार-बार मन में उठानी चाहिये। जो कल्पना की जाय, उसके औचित्य या अनौचित्य पर पूरा ध्यान रखना चाहिये। ऐसा न हो कि स्वभाव-विरुद्ध, लोकाचार विरुद्ध अथवा प्रकरण-विरुद्ध लिख मारा जाय।

कवि के पास शब्दों का एक बृहद् भाण्डार होना चाहिये जिससे आन्तरिक भावों के प्रकट करने में किसी प्रकार की बाधा न पड़े। जिस कवि के पास नाना प्रकार के शब्दों की प्रचुरता होती है, वह अत्यन्त शीघ्रता और सुगमता से अपने विचारों को तत्काल प्रकट कर सकेगा। इसलिये शब्दों की बहुज्ञता महोपयोगी है। एक ही अर्थ के द्योतक बहुत से शब्दों को तथा अनेकार्थवाची शब्दों को कठस्थ रखने से बड़ी सहायता मिलती है और उनके उचित प्रयोग से कविता में रोचकता बढ़ती है। हरएक शब्द के आतरिक भावों को समझना कि इसमें क्या विशेषता है। एक ही अर्थ के द्योतक शब्दों में से जहाँ जिस शब्द की अधिक आव॰ पड़े और जहाँ जिसके होने से कविता में हो वहाँ उसी शब्द को स्थान देने की चेष्टा

तात्पर्य यह कि शब्दों के उपयोग का अच्छा ज्ञान प्राप्त रना चाहिये।

अब हम आगे कुछ प्रचलित छन्दों के भेद और उनके लिखते हैं। इनको ध्यान-पूर्वक समझ

करना भी अत्यन्त आवश्यक है। विना इसके जाने किसी कवि की कविता निर्दिष्ट दोषों से रहित नहीं हो सकती।

कवि के लिए एकान्त स्थान बहुत उपयुक्त है। जहाँ किसी प्रकार का शोर-गुल न हो, आसपास कोई ऐसे पदार्थ न हों कि बार-बार ध्यान भङ्ग हो जाय, उसी शान्तिमय स्थान में सुख-पूर्वक बैठकर कविता लिखनी चाहिये। जिस विषय पर कविता लिखनी हो, उसी विषय की कल्पना बार-बार मन में उठानी चाहिये। जो कल्पना की जाय, उसके औचित्य या अनौचित्य पर पूरा ध्यान रखना चाहिये। ऐसा न हो कि स्वभाव-विरुद्ध, लोकाचार विरुद्ध अथवा प्रकरण विरुद्ध लिख मारा जाय।

कवि के पास शब्दों का एक बृहद् भाण्डार होना चाहिये। जिससे आन्तरिक भावों के प्रकट करने में किसी प्रकार की बाधा न पड़े। जिस कवि के पास नाना प्रकार के शब्दों की प्रचुरता होती है, वह अत्यन्त शीघ्रता और सुगमता से अपने विचारों को तत्काल प्रकट कर सकेगा। इसलिये शब्दों की बहुज्ञता महोपयोगी है। एक ही अर्थ के द्योतक बहुत से शब्दों को तथा अनेकार्थवाची शब्दों को कण्ठस्थ रखने से बड़ी सहायता मिलती है और उनके उचित प्रयोग से कविता में रोचकता बढ़ती है। हरएक शब्द के आतरिक भावों को समझना चाहिये कि इसमें क्या विशेषता है। एक ही अर्थ के द्योतक बहुत से शब्दों में से जहाँ जिस शब्द की अधिक आवश्यकता समझ पड़े और जहां जिसके होने से कविता में अनूठापन आ जाता हो वहाँ उसी शब्द को स्थान देने की चेष्टा करनी चाहिये।

(६)

आभीर

ग्यारह मात्राओं का आभीर छंद होता है। अंत में जगण होता है।

उदाहरण—

सब का कर उपकार। दुखियों को कर प्यार॥
है यह राह पवित्र। सुख पाने की मित्र॥

(७)

तोमर

बारह मात्राओं का तोमर छन्द होता है। अन्त में गुरु और लघु होते हैं।

उदाहरण—

मुख मे मधुर उचार।
कर में सदा उपकार॥
रखते हृदय में प्रीति।
है सुजन की यह रीति॥

(८)

चन्द्रमणि

तेरह मात्राओं का चन्द्रमणि छन्द होता है। अन्त में एक नगण होता है।

उदाहरण—

कर सद्‌गति से प्यार अब।
छोड़ कपट-व्यवहार सब॥

(३)

छवि

आठ मात्राओं का छवि छद होता है। अत में जगण होता है।

उदाहरण—

जीवन-चरित्र । निज रख पवित्र ॥
यह जगत जान । दर्पण समान ॥

(४)

हारी

नौ मात्राओं का हारी छद होता है। अंत में दो गुरु होते हैं।

उदाहरण—

आलस्य त्यागो । श्रम से न भागो ॥
यदि कीर्ति चाहो । प्रण को निबाहो ॥

(५)

दीपक

दश मात्राओं का दीपक छद होता है। अंत मे गुरु लघु होता है।

उदाहरण—

वह मनुज है धन्य । वैसा नही अन्य ॥
दे देश को दान । जो देह धन प्राण ॥

(६)

आभीर

ग्यारह मात्राओं का आभीर छंद होता है। अंत में जगण होता है।

उदाहरण—

सब का कर उपकार। दुखियों को कर प्यार॥
है यह राह पवित्र। सुख पाने की मित्र!॥

(७)

तोमर

बारह मात्राओं का तोमर छन्द होता है। अन्त में गुरु और लघु होते हैं।

उदाहरण—

मुख में मधुर उचार।
कर में सदा उपकार॥
रखते हृदय में प्रीति।
है सुजन की यह रीति॥

(८)

चन्द्रमणि

तेरह मात्राओं का चन्द्रमणि छन्द होता है। अन्त [illegible] नगण होता है।

उदाहरण—

कर सद्गति से प्यार अब।
छोड़ कपट-व्यवहार सब॥

निज सुकर्म के अङ्क जप।
पर सेवा है परम तप॥

(९)

सखी

चौदह मात्राओं का सखी छंद होता है। अन्त में यगण होता है।

उदाहरण—

सब घर घर की व्रजनारी।
दधि गोरस बेचनहारी॥
मिलि जुत्थ सबै मत कीन्हा।
जमुना-तट मारग लीन्हा॥

व्रजवासीदास

(१०)

प्रतिभा

चौदह मात्राओं का प्रतिभा छन्द होता है। आदि में लघु होता है। इसका दूना गजल होता है।

उदाहरण—

चरित है मूल्य जीवन का।
वचन प्रतिबिम्ब है मन का॥
सुयश है आयु सज्जन की।
सुजनता है प्रभा धन की॥

यह दीन दास अब है हताश।
प्रभु शीघ्र काटिये मोह पाश ॥

(१६)

चौपाई

सोलह मात्राओं का चौपाई छन्द होता है। अन्त में जगण र तगण न पड़ने चाहियें।

उदाहरण—

नव फलधर तरुवर नय जाते।
नव जलधर क्षिति पर नियराते ॥
यहि विधि सुजन लोक-हितकारी।
होहिं विनम्र विभव बल धारी ॥

(१७)

शक्ति

अठारह मात्राओं का शक्ति छंद होता है। आदि में लघु और अंत में सगण, रगण या नगण होता है। यह भुजंगी छंद के ढंग का है, पर वर्ण-वृत्त नहीं है। उर्दू के 'फ़ऊलुन फ़ऊलुन फ़ऊलुन फ़अल' बहर से मिलता-जुलता है।

उदाहरण—

अरे, उठ कि अब तो सवेरा हुआ।
नहीं दूर तेरा अँधेरा हुआ ॥
बहुत दूर करना तुझे है सफ़र।
नहीं ज्ञात है राह घर की किधर ॥

उदाहरण—

मित्र सफल निज जीवन करो।
हृदय बीच शुभ गुण गण धरो॥
गैल सदा उन्नति की गहो।
नेता बन समाज में रहो॥

(१४)

चौपई

पन्द्रह मात्राओं का चौपई छन्द होता है। अन्त में गुरु और लघु होता है।

उदाहरण—

उपवन में अति भरी उमङ्ग।
कलियाँ खिलती हैं बहुरङ्ग॥
पर मिलता है उनको मान।
जो हैं सुखद सुगन्ध-निधान॥

(१५)

पद्धरि

सोलह मात्राओं का पद्धरि छन्द होता है। अन्त में जगण होता है।

उदाहरण—

आनन्द कन्द ! करुणा-निधान।
हे विश्वकोष ! सब शक्तिमान॥

(२०)

सगुण

उन्नीस मात्राओं का सगुण छंद होता है। अंत में जगण होता है। आदि में लघु होता है। यह उर्दू के 'फऊलुन फऊलुन फऊलुन फऊल' से मिलता-जुलता है।

उदाहरण—

जिसे रात दिन काम से है लगाव।
ज़रा भी नहीं काहिली का खिंचाव॥
जिसे है सदा एक धुन एक चाव।
यही डालता दूसरों पर प्रभाव॥

(२१)

शास्त्र

बीस मात्राओं का शास्त्र छंद होता है। अंत में गुरु लघु होता है। उर्दू का 'मफाईलुन मफाईलुन मफाईल' यही है।

उदाहरण—

किसी के काम को सीखो भली बात।
नहीं बेकार खोओ बैठ दिनरात॥
हृदय से मधुर लगता है जिन्हें काम।
उन्हें कब सुबह बीती और कब शाम॥

(२२)

हंसगति

बीस मात्राओं का हंसगति छंद होता है। ग्यारह और नौ मात्रा पर यति होती है। अंत में दो लघु पड़ते हैं।

(१८)

पीयूष-वर्ष

उन्नीस मात्राओं का पीयूष-वर्ष छंद होता है। अंत में लघु गुरु होता है। दसवीं और नवीं मात्रा पर विराम होता है। अन्त मे नगण हो तो इसी छंद का नाम आनन्द वर्द्धक हो जाता है। फारसी की बहर 'फायलातुन फायलातुन फायलुन' से यह मिलता-जुलता है।

उदाहरण—

जो सुयश जग में कमाया कुछ नहीं।
उस अबुध के हाथ आया कुछ नहीं॥
ज्ञान विद्या-बल कमाओ और यश।
जीत अपने को करो सब लोक वश॥

(१९)

सुमेरु

उन्नीस मात्राओं का सुमेरु छंद होता है। बारहवीं और सातवीं मात्रा पर विराम होता है। अंत में दो गुरु होते हैं। उर्दू का 'मफाईलुन मफाईलुन फऊलुन' यही है।

उदाहरण—

कहाँ हो हे हमारे राम प्यारे।
मुझे तुम छोड़कर वन को सिधारे॥
कहाँ प्यारी जनक की वह लली है।
जिसे देखे बिना अति बेकली है॥

हरिश्चन्द्र

पृथ्वी का गुण सरस, गन्ध मन भा गया।
खग-कुल का कल-विकल करुण रव छा गया॥
मैथिलीशरण गुप्त

(२५)

कुंडल

बाईस मात्राओं का कुण्डल छंद होता है। बारह और दस मात्रा पर यति होती है। अंत में दो गुरु होते हैं। उर्दू में यह 'मफऊल मफाईल मफाईल फऊलुन' से मिलता है।

उदाहरण—

तू दयाल दीन हौं, तु दानि हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तु पाप-पु ज-हारी॥
तू गरीब को नेवाज, हौं गरीब तेरो।
बारक कहिये कृपाल, तुलसिदास मेरो॥
तुलसीदास

(२६)

प्रभाती

कुण्डल के अन्त में यदि एक ही गुरु हो, तो उसे प्रभाती छन्द कहते हैं।

उदाहरण—

ठुमुकि चलत रामचन्द्र बाजत पैजनियाँ।
धाय मातु गोद लेत दसरथ की रनियाँ॥

उदाहरण—

होते हैं छवि देख विलोचन विकसित।
होता है गुण देख हृदय आनन्दित॥
पर प्रिय लगता नहीं रूप से दुर्गुण।
कुरूपता को ढँक देता है सद्गुण॥

(२३)

अरुण

बीस मात्राओं का अरुण छंद होता है। पाँच-पाँच और दस मात्रा पर यति होती है। अंत में रगण होता है। उर्दू का 'फ़ायलुन फायलुन फायलुन फायलुन' यही है।

उदाहरण—

आजकल रात-दिन एकही भाव है।
लोक के चित्त में एकही चाव है॥
देश-हित में जिओ देश-हित में मरो।
देशहित-हेतु सर्वस्व अर्पण करो॥

(२४)

प्लवंगम

इक्कीस मात्राओं का प्लवंगम छंद होता है। ग्यारह और दस मात्रा पर विराम होता है। अंत में जगण पड़ता है।

उदाहरण—

आया झोका एक वायु का सामने।
पाया सिर पर सुमन समर्पित राम ने॥

पृथ्वी का गुण सरस, गन्ध मन भा गया।
खग-कुल का कल-विकल करुण रव छा गया॥

मैथिलीशरण गुप्त

(२५)

कुंडल

बाईस मात्राओं का कुण्डल छंद होता है। बारह और दस मात्रा पर यति होती है। अंत में दो गुरु होते हैं। उर्दू में यह 'मफऊल मफाईल मफाईल फऊलुन' से मिलता है।

उदाहरण—

तू दयाल दीन हौं, तु दानि हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तु पाप-पुंज-हारी॥
तू गरीब को नेवाज, हौं गरीब तेरो।
बारक कहिये कृपाल, तुलसिदास मेरो॥

तुलसीदास

(२६)

प्रभाती

कुण्डल के अन्त में यदि एक ही गुरु हो, तो उसे प्रभाती छन्द कहते हैं।

उदाहरण—

ठुमुकि चलत रामचन्द्र बाजत पैंजनियाँ।
धाय मातु गोद लेत दसरथ की रनियाँ॥

उदाहरण—

होते हैं छवि देख विलोचन विकसित।
होता है गुण देख हृदय आनन्दित॥
पर प्रिय लगता नहीं रूप से दुर्गुण।
कुरूपता को ढँक देता है सद्गुण॥

(२३)

अरुण

बीस मात्राओं का अरुण छंद होता है। पाँच-पाँच और दस मात्रा पर यति होती है। अंत में रगण होता है। उर्दू का 'फायलुन फायलुन फायलुन फायलुन' यही है।

उदाहरण—

आजकल रात-दिन एकही भाव है।
लोक के चित्त मे एकही चाव है॥
देश-हित में जिओ देश-हित में मरो।
देशहित-हेतु सर्वस्व अर्पण करो॥

(२४)

प्लवगम

इक्कीस मात्राओं का प्लवगम छंद होता है। ग्यारह और दस मात्रा पर विराम होता है। अंत मे जगण पडता है।

उदाहरण—

आया झोंका एक वायु का सामने।
पाया सिर पर सुमन समर्पित राम ने॥

पृथ्वी का गुण सरस, गन्ध मन भा गया।
खग-कुल का कल-विकल करुण रव छा गया॥
मैथिलीशरण गुप्त

(२५)

कुडल

बाईस मात्राओं का कुण्डल छंद होता है। बारह और दस मात्रा पर यति होती है। अंत में दो गुरु होते हैं। उर्दू में यह 'मफऊल मफाईल मफाईल फऊलुन' से मिलता है।

उदाहरण—

तू दयाल दीन हौं, तु दानि हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तु पाप-पुंज-हारी॥
तू गरीब को नेवाज, हौं गरीब तेरो।
बारक कहिये कृपाल, तुलसिदास मेरो॥
तुलसीदास

(२६)

प्रभाती

कुण्डल के अन्त में यदि एक ही गुरु हो, तो उसे प्रभाती छन्द कहते हैं।

उदाहरण—

ठुमुकि चलत रामचन्द्र बाजत पैजनियाँ।
धाय मातु गोद लेत दसरथ की रनियाँ॥

तन मन धन वारि मञ्जु बोलतीं वचनियाँ।
कमल वदन घोल मधुर मद सी हसनियाँ॥
तुलसीदास

(२७)

लावनी

बाईस मात्राओं का लावनी छंद होता है। तेरह और नौ मात्रा पर विराम होता है। अन्त में दो गुरु या लघु गुरु या दो लघु भी हो सकते हैं। लावनी में छ चरण होते हैं।

उदाहरण—

सम्राट स्वयं प्राणेश सचिव देवर हैं।
देते आकर आशीष हमें मुनिवर हैं॥
धन तुच्छ यहाँ यद्यपि असंख्य आकर हैं।
पानी पीते मृग-सिंह एक तट पर हैं॥
सीता रानी को यहाँ लाभ ही लाया।
मेरी कुटिया में राजभवन मन भाया॥
मैथिलीशरण गु

(२८)

उपमान

तेईस मात्राओं का उपमान छन्द होता है। अन्त में दो गुरु और तेरह और दस मात्रा पर विराम होता है।

उदाहरण—

कभी सुयश पाता नहीं, है अत्याचारी।
निरुद्यमी होता नहीं, सुख का अधिकारी॥

उसकी मञ्जिल का नहीं, अन्त कभी होता।
जो अन्धा है एक तो, तिस पर है सोता॥

(२९)

मदन

चौबीस मात्राओं का मदन छंद होता है। चौदह और दस मात्रा पर यति होती है। अंत में गुरु लघु होता है। इसे रूपमाला भी कहते हैं।

उदाहरण—

यौवन श्री से विभासित कान्ति अति कमनीय।
मदन सुन्दर, दृग मनोहर, हास्य अनुकरणीय॥
उच्च कुल, धन, मान, विक्रम, अन्य विभव अनेक।
लोकप्रिय होते नहीं ये बिना विनय विवेक॥

(३०)

दिग्पाल

चौबीस मात्राओं का दिग्पाल छंद होता है। बारह, बारह मात्रा पर यति होती है। अन्त में दो गुरु पड़ते हैं। उर्दू में यह 'मफ़ऊल फ़ायलातुन मफ़ऊल फ़ायलातुन' से मिलता है।

उदाहरण—

पीछे क़दम ज़रा भी हक़ से न डालते हैं।
रण-भूमि में ख़ुशी से निज रक्त डालते हैं॥
दीपक स्वतंत्रता का जब वीर बालते हैं।
तब वे यहाँ अँधेरा घर से निकालते हैं॥

(३१)

रोला

चौबीस मात्राओं का रोला छन्द होता है। ग्यारह और तेरह मात्राओ पर यति होती है। अन्त में दो गुरु या दो लघु पड़ते हैं।

उदाहरण—

ससि बिन सूनी रैन, ज्ञान बिन हिरदै सूनो।
कुल सूनो बिन पुत्र, पत्र बिनु तरुवर सूनो॥
गज सूनो इक दन्त, और बिनु पुहुप विहूनो।
विप्र सून बिन वेद, ललित बिन सायर सूनो॥ बैताल

(३२)

मुक्तामणि

पचीस मात्राओं का मुक्तामणि छन्द होता है। तेरह और बारह मात्रा पर यति होती है। अन्त मे दो गुरु होते हैं।

उदाहरण—

उन्नतिशील सुजान के जीवन की सब लीला।
समझ उसी विधि से करो अपना चरित सजीला॥
रखो हृदय में भाव नित उन्नत करने वाला।
यथा कृपण के कण्ठ मे मुक्तामणि की माला॥

(३३)

कामरूप

छब्बीस मात्राओ का कामरूप छन्द होता है। नौ, सात और दस मात्रा पर यति होती है। अन्त में गुरु लघु होता है।

उदाहरण—

हे प्रिय युवकगण ! क्यों न बनते, लोक-विश्रुत शूर ।
शृंगार रसमय, चरित - नाशक, वृत्ति से रह दूर ॥
आदर्श हैं शंकर परशुधर भीष्म श्री हनुमान ।
क्यों खो रहे हो, विमल शोभा, कामरूप समान ॥

(३४)

गीतिका

छब्बीस मात्राओं का गीतिका छन्द होता है। चौदह और बारह पर यति होती है। अन्त में लघु, गुरु होता है।

उदाहरण—

धर्म के मग में अधर्मी से कभी डरना नहीं ।
चेतकर चलना कुमारग में कदम धरना नहीं ॥
शुद्ध भावों में भयानक भावना भरना नहीं ।
बोध-वर्द्धक लेख लिखने में कमी करना नहीं ॥

नाथूरामशङ्कर शर्मा

(३५)

गीता

छब्बीस मात्राओं का गीता छंद होता है। चौदह और बारह मात्रा पर यति होती है। अन्त में गुरु, लघु होता है।

उदाहरण—

भय रहित जीना भय रहित मरना उचित है मित्र ।
भय सहित जीवन मरण हैं दोनों महा अपवित्र ॥

निर्भय रहो, दृढ़ हो गहो वर बोध-वर्धक पंथ ।
यह दे रहा उपदेश है हरि-कथित गीता ग्रन्थ ॥

(३६)

शुद्ध गीता

सत्ताईस मात्राओं का शुद्ध गीता छन्द होता है। चौदह और तेरह मात्रा पर यति होती है। अन्त में गुरु, लघु होता है। उर्दू का 'फायलातुन फायलातुन फायलातुन फायलात' इसी से मिलता-जुलता है।

उदाहरण—

नित्य ही रक्खो हृदय में गुरुजनों की सीख याद ।
चाहिये साफल्य तो तुम छोड़ दो प्यारे! प्रमाद ॥
झूठ या कपटाचरण का अन्त है केवल विषाद ।
सत्य ही की जीत होती है समझ लो निर्विवाद ॥

(३७)

सरसी

सत्ताईस मात्राओं का सरसी छन्द होता है। सोलह और ग्यारह पर यति होती है। अन्त में गुरु, लघु होता है।

उदाहरण—

अंशुमालि के शुभागमन की, बेला समझ समीप ।
नभ में बुझा चुके ये सुर भी, निज-निज घर के दीप ॥
कलरव सुमन-विकास सङ्ग ले, निकली रवि की कोर ।
क्षण भर पहले ही दो प्रेमी, कहाँ गए किस ओर ॥

(३८)

ललित पद

सोलह और बारह मात्राओं पर विश्राम देकर अट्ठाईस मात्राओं का ललित पद छन्द होता है। अन्त में दो गुरु या एक लघु एक गुरु भी होते हैं।

उदाहरण—

तुम अपने सुख के प्रबन्ध के, हो न पूर्ण अधिकारी।
यह मनुष्यता पर कलंक है, हे प्रियबन्धु ! तुम्हारी॥
पराधीन रहकर अपना सुख, शोक न कह सकता है।
यह अपमान जगत में केवल, पशु ही सह सकता है॥

पथिक

(३९)

हरिगीतिका

अट्ठाईस मात्राओं का हरिगीतिका छन्द होता है। सोलह और बारह मात्रा पर यति होती है। अन्त में लघु, गुरु होता है।

उदाहरण—

करि विनय सिय रामहि समर्पी,
जोरि कर पुनि-पुनि कहै।
बलि जाउँ तात सुजान तुम कहँ,
विदित गति सबकी अहै॥

पर मैं पुस्तक बिना न इनको किसी भाँति स्वीकार करूँ ।
पुस्तक पढ़ते पर्ण-कुटी में दीन बना सानन्द मरूँ ॥

(४४)

रुचिर

तीस मात्राओं का रुचिर छन्द होता है। सोलह और चौदह मात्रा पर यति होती है। अन्त में दो गुरु या दो लघु या लघु गुरु पड़ते हैं।

उदाहरण—

इस किंकर ने उतर अद्रि से दया-दृष्टि प्रभु की पाई ।
सहज सहानुभूति-वश उस पर प्रीति उन्होंने दिखलाई ॥
लिये जा रहा था रावण वक जब शफरी-सी सीता को ।
देखा हमने स्वयं तड़पते उन पद्मिनी पुनीता को ॥

मैथिलीशरण गुप्त

(४५)

वीर

इकतीस मात्राओं का वीर छन्द होता है। चौपाई और चौपई मिला देने से वीर छन्द बन जाता है। आल्हा यही छन्द है।

उदाहरण—

राजा हमारे भये कलजुगहा जयचँद और पिथौरा राय ।
लरि लरि आपुस में चापर भये मरिगे हमें गुलाम बनाय ॥
धन बल धरम करम हिन्दुन के बटाढार भये एक साथ ।
राज छुटा अपने हाथे से 'भारतमाता' भई अनाथ ॥

(४६)

त्रिभंगी

बत्तीस मात्राओं का त्रिभगी छन्द होता है। १०, ८, ८ और ६ मात्रा पर यति होती है। अत में गुरु होता है। जगण वर्जित है।

उदाहरण—

करि बदन विमडित, ओज अखंडित, पूरण पडित, ज्ञानपर।
गिरिनन्दिनि नन्दन, असुरनिकन्दन, सुर उर चंदन, कीर्तिकर॥
भूपण मृग लचण, वीर विचक्षण, जन प्रण रक्षण, पाशधर।
जय जय गणनायक, खलगणघायक, दास सहायक, बिघ्नहर॥
दास

(४७)

दडकला

बत्तीस मात्राओं का दडकला छद होता है। दस, आठ और चौदह मात्रा पर यति होती है। अन्त में सगण होता है।

उदाहरण—

शिव विष्णु ईश बहु रूप तुई नभ तारा चन्द्र सुधाकर है।
अम्बा धारानल शक्ति स्वधा स्वाहा जल पौन दिवाकर है॥
हम अंशांशांश समझते हैं सब खाक जाल से पाक रहैं।
सुन लालविहारी ललित ललन हम तो तेरे ही चाकर हैं॥
सीतल

(४८)

करखा

सैंतीस मात्राओं का करखा छन्द होता है। आठ, बारह, आठ और नौ मात्रा पर विराम होता है। अन्त में मगण होता है।

उदाहरण—

भयो नरसिंह बलवान नरसिंह प्रभु
सन्त हितकाज अवतार धारो।
खंभ ते निकसि भू हिरनकस्यप पटक
झटक दै नखन भट उर बिदारो॥
ब्रह्मरुद्रादि सिर नाय जय जय कहत
भक्त प्रहलाद निज गोद लीनो।
प्रीति सो चारि दै राजसुख साज सब
नरायनदास वर अभय दीनो॥

नारायणदास

(४९)

हसाल

सैंतीस मात्राओं का हसाल छन्द होता है। अन्त में यगण होता है। बीस और सत्रह मात्रा पर यति होती है।

उदाहरण—

तो सही चतुर तूँ जान परवीन अति
परै जनि पींजरे मोह कूआ।

पाइ उत्तम जनम लाइ लै चपल मन
गाइ गोविन्द गुन जीत जूवा ॥
आप ही आप अज्ञान नलिनी बँध्यो
बिना प्रभु बिमुख कै बेर मूवा ।
दास सुन्दर कहैं परम पद तौ लहैं
राम हरि राम हरि बोल सूवा ॥

(५०)

मदनहर

चालीस मात्राओं का मदनहर छन्द होता है। दस, आठ, चौदह और आठ मात्रा पर विराम होता है।

उदाहरण—

सग सीता लछिमन, श्रीरघुनन्दन,
मातन के शुभ पाइ परे, सब दुख हरे।
अँसुवन अन्हवाये, भागनि आये,
जीवन पाये अंक भरे, अरु अंक धरे ॥
वर बदन निहारैं, सरबसु वारैं,
देहि सबै सबहीन घनो बरु लेहि घनो।
तन मन न सँभारैं, यहै बिचारैं,
भाग बड़ो यह है अपनो, किधौं है सपनो ॥

(५१)

विजया

चालीस मात्राओं का विजया छन्द होता है। दस दस

मात्रा पर विराम होता है। अन्त में रगण रखने से पढ़ने में मनोहर लगता है।

उदाहरण—

सित कमल वंस सी सीतकर अंस सी
विमल विधि हंस सी हीर वर हार सी।
सत्य गुन सत्व सी सांत रस तत्व सी
ज्ञान गौरत्व सी सिद्धि विसतार सी॥
कुन्द सी कास सी भारती वास सी
सुरतरु निहार सी सुधारस सार सी।
गंगजल धार सी रजत के तार सी
कीर्ति तव विजय की सम्भु आगार सी॥

छन्दोऽर्णव

(५२)

हरिप्रिया

छियालीस मात्राओं का हरिप्रिया छन्द होता है। बारह, बारह, बारह और दस मात्रा पर विराम होता है। अन्त में दो गुरु होते हैं। इसका नाम चंचरी भी है।

उदाहरण—

चंद किरन सीतल भई चकई पिय मिलन गई
त्रिविध मंद चलत पवन पल्लव द्रुम डोले।
प्रात भानु प्रकट भयो, रजनी को तिमिर गयो
भृंग करत गुंजगान कमलन दल खोले॥

ब्रह्मादिक धरत ध्यान सुर नर मुनि करत गान
जागन की बेर भई नयन पलक खोले।
तुलसिदास अति अनन्द, निरखि के मुखारविंद
दीनन को देत दान भूषन बहुमोले॥
तुलसीदास

मात्रिक—अर्द्ध सम

(१)

बरवा

पहला और तीसरा पद विषम और दूसरा और चौथा पद सम कहलाता है। ३८ मात्रा का बरवा छंद होता है। विषम चरण में बारह और सम में सात मात्रायें होती हैं। अन्त में जगण रखना रोचक होता है। अन्त में लघु अवश्य होना चाहिये।

उदाहरण—

सब से मिलकर रह मन, बैर बिसार।
दुर्लभ नर तन पाकर, कर उपकार॥
जीवन का कर प्रतिक्षन, शुभ उपयोग।
यह न मिले फिर नदिया, नाव सँयोग॥

(२)

अति बरवा

चयालीस मात्राओं का अति बरवा छंद होता है। बारह और नौ मात्रा पर विराम होता है।

उदाहरण—

प्रेम प्रीति रस बिरवा पिय चलेहु लगाय।
सीचन की सुधि लीजौ कहुँ मुरझि न जाय॥

(३)

दोहा

विषम पदों में तेरह और सम मे ग्यारह मात्रा का दोहा छन्द होता है। आदि मे जगण न रखना चाहिये। अंत में लघु होता है।

उदाहरण—

बनना चाहो वीर जो, करला गौरव-त्राण।
या कर धारो लेखनी, या विकराल कृपाण॥

(४)

सोरठा

सम चरणों में १३ और विषम चरणो में ११ मात्राओं का सोरठा छन्द होता है। यह दोहे का उल्टा होता है। सोरठ (सौराष्ट्र) देश में इसका प्रचार अधिक होने से इसका नाम सोरठा पडा।

उदाहरण—

"रहिमन" मोहि न सुहाय, अमी पियावत मान विन।
वरु विष देय बुलाय, मान सहित मरिबो भलो॥

रहीम

———

मात्रिक—विषम

(१)

कुंडलिया

दोहा और रोला मिलाकर छः पद और प्रत्येक पद में चौबीस मात्राओं का कुंडलिया छन्द होता है। कुण्डलिया के प्रारम्भ का शब्द और अन्त का शब्द एक ही होता है। दोहे का चौथा चरण रोला का आरम्भ होता है। कुल मात्रायें १४४ होती हैं।

उदाहरण—

रहिये लटपट काटि दिन, बरु घामे माँ सोय।
छाँह न वाकी बैठिये, जो तरु पतरो होय॥
जो तरु पतरो होय एक दिन धोखा दैहै।
जा दिन बहै बयारि टूटि तब जर से जैहै॥
कह 'गिरिधर' कविराय छाँह मोटे की गहिये।
पत्ता सब झरि जाय तऊ छाँहैं माँ रहिये॥

गिरिधर कविराय

(२)

उल्लाला

यह अट्ठाईस मात्राओं का छंद है। पहले और तीसरे चरण में १५ और दूसरे तथा चौथे चरण में १३ मात्राएँ होती हैं। १५ और १३ पर यति होती है। कोई-कोई इसे २६ मात्राओं ही का लिखते हैं। उनमें तेरह-तेरह मात्राओं पर यति होती है।

दोनो नियम ठीक हैं। कवि अपने इच्छानुसार चाहे अट्ठाईस मात्राओं का लिखे, चाहे छब्बीस का। मेरी राय में अट्ठाईस मात्राओं वाला अधिक सरस होता है।

उदाहरण—

हे शरणदायिनी देवि ! तू, करती सब का त्राण है।
हे मातृभूमि ! सन्तान हम, तू जननी, तू प्राण है॥

मैथिलीशरण गुप्त

(३)

छप्पय (षट्पदी)

छ पद और १४८ मात्राओं का छप्पय छन्द होता है। प्रथम चार पद रोला के होते हैं, शेष दो पद उल्लाला के।

उदाहरण—

जहाँ स्वतन्त्र विचार न बदले मन में मुख में।
जहाँ न बाधक बने सबल निबलों के सुख में॥
सब को जहाँ समान निजोन्नति का अवसर हो।
शान्ति-दायिनी निशा हर्ष-सूचक वासर हो॥
सब भाँति सुशासित हों जहाँ, समता के सुखकर नियम।
बस, उसी स्वतन्त्र स्वदेश में, जागें हे जगदीश ! हम॥

वर्ण-वृत्त—सम

(१)

तिलका

दो सगण का तिलका वृत्त होता है।

हो गया सुगन्ध वात।
मल्लिका खिली प्रभात॥

(७)

प्रमाणिका

एक जगण, रगण और लघु गुरु का प्रमाणिका वृत्त होता है।

उदाहरण—

प्रमाद मोह त्याग से।
विवेक से विराग से॥
मिले अवश्य मुक्ति है।
प्रमाणिका सुयुक्ति है॥

(८)

दो रगण का विमोहा वृत्त

ब्रह्म को
वेद को
धर्म को
मोह को

(९

एक
होता है।

सत्कीर्ति का स्वाद लिया करो सदा ।
आदर्श को मान दिया करो सदा ॥

(१७)

चंचला

र ज र ज र ल का चंचला वृत्त होता है ।

उदाहरण—

त्याग शुभ्र सौध आ किया अरण्य में निवास ।
हो गया अनन्त शक्तिमान का अनन्य दास ॥
सो न मैं रहा, न इन्द्रियाँ न वे रहे विकार ।
चंचला करे कदापि क्यों निरर्थ बार बार ॥

(१८)

प्रमिताक्षरा

स ज स स का प्रमिताक्षरा वृत्त होता है ।

उदाहरण—

जिससे प्रसन्न सब लोग रहें ।
जिसको सुविज्ञ सब ठीक कहें ॥
वह शीलवंत गुण-मंडित है ।
सुप्रवीण लोक-प्रिय पंडित है ॥

(१९)

तारक

चार सगण एक गुरु का तारक वृत्त होता है ।

उदाहरण—

फलहीन हुये सब यत्न हमारे।
मिट हाय गये सुख-साधन सारे॥
अब हे प्रभु ज्ञान-प्रकाश दिखाओ।
करुणा करके तम दूर हटाओ॥

(२०)

इन्द्रवज्रा

त त ज ग ग का इन्द्रवज्रा वृत्त होता है। कुल ग्यारह अक्षर होते हैं।

उदाहरण—

जागो, उठो भारत-देश-वासी।
आलस्य त्यागो, न बनो विलासी॥
ऊँचे उठो दिव्य कला दिखाओ।
संसार में पूज्य पुनः कहाओ॥

(२१)

उपेन्द्रवज्रा

ज त ज ग ग का उपेन्द्रवज्रा वृत्त होता है। पाँच और छः अक्षरों पर विराम होता है।

उदाहरण—

बड़ा कि छोटा कुछ काम कीजै।
परन्तु पूर्वा पर सोच लीजै॥
बिना विचारे यदि काम होगा।
कभी न अच्छा परिणाम होगा॥

मैथिलीशरण गुप्त

(२९)

मोदक

चार भगण का मोदक वृत्त होता है।

उदाहरण—

हो निज देश सुधार सखा ! तब।
उन्नति के कुछ काम करो जब॥
केवल हैं उपदेश वृथा सब।
भूख मिटे मनमोदक से कब?

(३०)

✓ वंशस्थ

ज त ज र का वंशस्थ वृत्त होता है।

उदाहरण—

प्रवाह होते तक शेष श्वास के।
सरक्त होते तक एक भी शिरा॥
सशक्त होते तक एक लोम के।
लगा रहूँगा हित-सर्व-भूत मे॥

अयोध्यासिंह उपाध्याय

(३१)

✓ द्रुतविलम्बित

न भ भ र का द्रुतविलम्बित वृत्त होता है।

उदाहरण—

विपद संकुल विश्व प्रपंच है।
बहु छिपा भवितव्य रहस्य है॥

उदाहरण—

उसी उदार की कथा सरस्वती बखानती।
उसी उदार से धरा कृतार्थ भाव मानती॥
उसी उदार की सदा सजीव कीर्ति कूजती।
तथा उसी उदार को समस्त सृष्टि पूजती॥
अखण्ड आत्मभाव जो असीम विश्व में भरे।
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिये मरे॥

मैथिलीशरण गुप्त

(३९)

शार्दूल विक्रीडित

म स ज स त त ग का शार्दूलविक्रीडित वृत्त होता है। १२ और ७ अक्षरों पर विराम होता है।

उदाहरण—

जाती प्रेम न जाति-पाँति तुमसे, पूछी किसी की कहीं।
तेरे सम्मुख रंक और नृप में, है भेद होता नहीं॥
दोनों ही, बन और गेह, जग में, हैं तुल्य तेरे लिये।
ऊँचे मन्दिर से कुटी तक सभी, हैं चाह तेरी किये॥

मैथिलीशरण गुप्त

(४०)

चित्रलेखा

म भ न य य य का चित्रलेखा वृत्त होता है।

उदाहरण—

स्वस्तिवाद विरक्तों का, और हो कुछ वस्तु है।
वाक्यों में उनके होता, ईश का एवमस्तु है॥

मैथिलीशरण गुप्त

सवैया

२२ वर्ण से लेकर २६ वर्ण तक के कई एक वर्ण वृत्त सवैया नाम से प्रख्यात हो गये हैं। उनके कई भेद हैं। नीचे कुछ सवैयो के लक्षण और उदाहरण लिखे जाते हैं—

(१)

मदिरा

सात भगण और अन्त में एक गुरु का मदिरा सवैया होता है।

उदाहरण—

दीन अधीन हो पाय परी हो अरी उपकार को धावहि तू।
मेरी दशा लखि होहि प्रसन्न दया उर अन्तर लावहि तू॥
नैनन के हिय की विरहागिनि एकहि बार बुझावहि तू।
श्री मनमोहन-रूपसुधा "मदिरा" मद मोंहि छकावहि तू॥

अज्ञात

(२)

मत्तगयद

सात भगण और अन्त में दो गुरु का मत्तगयद सवैया होता है। इसे मालती भी कहते हैं।

उदाहरण—

स्वस्तिवाद विरक्तों का, और ही कुछ वस्तु है।
वाक्यों में उनके होता, ईश का एवमस्तु है॥

मैथिलीशरण गुप्त

सवैया

२२ वर्ण से लेकर २६ वर्ण तक के कई एक वर्ण वृत्त सवैया नाम से प्रख्यात हो गये हैं। उनके कई भेद हैं। नीचे कुछ सवैयों के लक्षण और उदाहरण लिखे जाते हैं—

(१)

मदिरा

सात भगण और अन्त में एक गुरु का मदिरा सवैया होता है।

उदाहरण—

दीन अधीन हो पाय परी हौं अरी उपकार को धावहि तू।
मेरी दशा लखि होहि प्रसन्न दया उर अन्तर लावहि तू॥
नैनन के हिय की विरहागिनि एकहि बार बुझावहि तू।
श्री मनमोहन-रूपसुधा "मदिरा" मद मोंहि छकावहि तू॥

अज्ञात

(२)

मत्तगयद

सात भगण और अन्त में दो गुरु का मत्तगयद सवैया होता है। इसे मालती भी कहते हैं।

उदाहरण—

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।
आठहु सिद्धि नवों निधि को सुख नन्द की गाय चराय बिसारौं॥
नैनन सों रसखान जबै ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिक ये कलधौत के धाम करील के कुंजन ऊपर वारौं॥

रसखान

(३)

किरीट

आठ भगण का किरीट सवैया होता है।

उदाहरण—

हे करतार ! बिनै सुनो दास की लोकन को अवतार करयो जनि।
लोकन को अवतार करयो तो मनुष्यन को तो सँवार करयो जनि॥
मानुष हू को सँवार करयो तो तिन्हैं बिच प्रेम पसार करयो जनि।
प्रेम पसार करयो तो दयानिधि केहू वियोग विचार करयो जनि॥

(४)

दुर्मिल

आठ सगण का दुर्मिल सवैया होता है।

उदाहरण—

कबहूँ ससि माँगत आरि करैं, कबहूँ प्रतिबिम्ब निहारि डरैं।
कबहूँ करताल बजाइ कै नाचत, मातु सबै मन मोद भरैं॥
कबहूँ रिसिआइ कहैं हठि कै, पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं।
अवधेस के बालक चारि सदा, तुलसी मन मन्दिर में बिहरैं॥

तुलसीदास

(५)

अरसात

सात भगण और अन्त मे एक रगण का अरसात सवैया होता है।

उदाहरण—

जा थल कीन्हे बिहार अनेकन ता थल काँकरी बैठि चुन्यो करैं।
जा रसना ते करी बहु बातन ता रसना सों चरित्र गुन्यो करैं॥
आलम, जौन से कुंजन में करी केलि तहाँ अब सीस धुन्यो करैं।
नैननि में जे सदा रहते तिनकी अब कान कहानी सुन्यो करैं॥

आलम

(६)

सुन्दरी

आठ सगण और अन्त मे एक गुरु का सुन्दरी सवैया होता है।

उदाहरण—

सुख शान्ति रहे सब ओर सदा, अविवेक तथा अघ पास न आवें।
गुण शील तथा बल बुद्धि बढ़े, हठ वैर विरोध घटे मिट जावे॥
सब उन्नति के पथ मे विचरैं, रति पूर्ण परस्पर पुण्य कमावे।
दृढ निश्चय और निरामय होकर, निर्भय जीवन मे जय पावे॥

मैथिलीशरण गुप्त

(७)

मकरंद

सात जगण और एक यगण का मकरद सवैया होता है। इसका नाम वाम भी है।

उदाहरण—

कैधैं हर धाम हरी धर छाँडि न्यायतनि पुरी मधुरी मनि बेली ।
नवैं नवधीव धरैं मति केशव बालक ते मँगही गँग गेली ॥
लियें सब आश्रिन स्वामिन संग जग जय आवै नगरा की महेली ।
भजैं मग मेह दसा निग नाम रहै तुहि नीर दुराज अकेली ॥

केशवदास

(८)

लवंगलता

आठ जगण और एक लघु का लवंगलता सवैया होता है ।

उदाहरण—

चढ़ी प्रति मन्दिर सोभ बढ़ी तरुनी अवलोकन को रघुनन्दनु ।
मनो गृहदीपति देह धरे सु किधौं गृहदेवि विमोहति है मनु ॥
किधौं कुल देवि दिपैं अति दम्पति के पुरलोगन की हलस्यो गनु ।
जहीं सु तहीं यहि भाँति लसैं निधि लोगनि को मन पालत हैं मनु ॥

केशवदास

(९)

चकोर

सात भगण और गुरु लघु का चकोर सवैया होता है ।

उदाहरण—

हे प्रिय बन्धु ! विरोध मिटाकर प्रीति प्रचार करो सब ओर ।
संयमशील बनो मतिमान सुधार करो प्रण ठान कठोर ॥
चेत करो, धिक जीवन है यदि नाम मिला जग में कुल-चोर ।

छोड घनो बकवाद बनो बस, भारत-उन्नति चन्द्र-चकोर ॥

सवैया छन्दों के और भी कई भेद हैं। परन्तु मदिरा, मत्त-गयद, किरीट, दुर्मिल, अरसात, सुन्दरी, मकरन्द, लवगलता और चकोर नामक सवैया हिन्दी-साहित्य में बहुत प्रचलित हैं। उनके लक्षण और उदाहरण ऊपर लिखे जा चुके हैं। उनके सिवा सात जगण और अत मे लघु गुरु का "सुमुखी", आठ सगण और एक लघु का "अरविंद", आठ भगण और दो लघु का "सुख" और आठ जगण का "मुक्तहरा" सवैया भी होते हैं।

दण्डक

दडक वे छन्द कहलाते हैं, जिनके प्रत्येक पद मे २६ से अधिक अक्षर हों। दंडक के दो भेद हैं—साधारण दडक और मुक्तक।

साधारण दण्डक के आठ भेद हैं, उनमे से दो के लक्षण और उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं—

सुधानिधि

इसमे एक गुरु और एक लघु के क्रम से ३२ वर्ण होते है।

उदाहरण—

का करै समाधि साधि का करै विराग जाग
का करै अनेक योग भोगहू करै सु काह।
का करै समस्त वेद औ पुराण शास्त्र देखि
कोटि जन्म लों पढे मिलै तऊ कछू न थाह ॥
राज्य ले कहा करे सुरेश औ नरेश ह्वै

इनमें बहुत प्रसिद्ध मुक्तकों के लक्षण और उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं—

(१)

मनहर कबित्त

यह छन्द एकतीस अक्षर का होता है। १६ और १५ अक्षरों पर विराम होता है। इसे घनाक्षरी और कवित्त भी कहते हैं। अन्त का अक्षर गुरु अवश्य होता है। शेष का कोई नियम नही है।

उदाहरण—

सुनिये विटप प्रभु पुहुप तिहारे हम, राखिहौ हमैं तो शोभा रावरी बढावैंगे। तजिहौ हरषि कै तो बिलग न मानैं कछू, जहाँ-जहाँ जैहैं तहाँ दूनो जस गावैंगे॥ सुरन चढैंगे नर सिरन चढैंगे फेरि, सुकवि "अनीस" हाथ हाथन बिकावैंगे। देस मे रहेंगे, परदेस मे रहेंगे, काहू भेस में रहेंगे तऊ रावरे कहावैंगे॥

अनीस

(२)

कलाधर

क्रमश ३० गुरु-लघु और अंत मे एक गुरु, कुल ३१ वर्णों का कलाधर दडक होता है।

उदाहरण—

जाय के भरत्थ चित्रकूट राम पास वेगि
हाथ जोरि दीन ह्वै सुप्रेम ते विनै करी।

सीय तात मात कौसिला वसिष्ठ आदि पूज्य
लोक वेद प्रीति नीति की सुरीतिहीं धरी॥
जान भूप बैन धर्मपाल राम है सकोच
धीर दे गँभीर बंधु की गलानि को हरी।
पादुका दई पठाय औध को समाज साज
देख नेह राम सीय के लिये कृपा भरी॥

काव्य-सुधाकर

(३)

रूप घनाक्षरी

लक्षण और उदाहरण एक ही छन्द में है—
रूपक घनाक्षरीहुँ गुरु लघु नियम न,
बत्तिस बरन चार धरिये चरन चारि।
कीजै बिसराम आठ आठ आठ आठ पर,
अन्त एक लघु धरि त्यों नियम उर धारि॥
या बिधि लच्छन भाग छन्द गुरु शेष नाग,
कीनो कबिराजन पै काज बुद्धि ते बिचारि।
पद्य शिशु लखिबे को रचना के करिबे को,
पिङ्गल बनायो भेद पढ़ि बुद्धि के सुधारि॥

छन्द-विनोद

अर्थात्, इस छन्द में गुरु लघु का कोई नियम नहीं है। सोलह सोलह अक्षर के विश्राम से बत्तीस अक्षरों का रूप घनाक्षरी छंद होता है। अंत में गुरु लघु (ऽ।) अवश्य होता है।

(४)

जलहरण

बत्तीस अक्षरों का जलहरण छंद होता है। अन्त में दो लघु होते हैं। कुछ कवियों ने अन्त में एक गुरु रखकर भी इसकी रचना की है।

उदाहरण—

भरत सदा ही पूजे पादुका उते मनेम
इते राम सीय बधु सहित पधारे बन।
सूपनखा के कुरूप मारे खल क्रुद्ध घने
हरी दससीस सीता राघव विकल मन॥
मिले हनुमान त्यों सुकंठ सों मिताई ठानि
बाली हति दीनों राज सुग्रीवहिं जानि जन।
रसिकविहारी केसरीकुमार सिंधु लाँघि
लंक-जारि सीय सुधि लायो मोद बाढो मन॥

रसिकविहारी

(५)

देव घनाक्षरी

आठ, आठ, आठ और नौ अक्षरों के यति से ३३ अक्षर का देव घनाक्षरी छंद होता है। अंत के तीन वर्ण लघु होते हैं।

उदाहरण—

झिल्ली झनकारें पिक-चातक पुकारें बन मोरनि गुहारें उठें जुगनू चमकि-चमकि। घोर घन कारे भारे धुरवा धुरारे धाय, धूमनि मचावें नाचें दामिनि दमकि-दमकि॥ झूकनि बहार वहे

वर्ण-वृत्त सूची में प्रत्येक संख्या को दूना करता हुआ बढाता जाय। अंत में अभीष्ट अंक प्राप्त होगा। जैसे, यह जानना हो कि दस मात्रा और दस वर्णों के कितने छंद हो सकते हैं, तो ऐसी सूची बनानी चाहिये—

मात्रा या वर्ण-संख्या	मात्रिक छंद-सूची	वर्ण-वृत्त-सूची
१	१	२
२	२	४
३	३	८
४	५	१६
५	८	३२
६	१३	६४
७	२१	१२८
८	३४	२५६
९	५५	५१२
१०	८९	१०२४

इसी प्रकार आगे भी गणित किया जा सकता है।

इससे यह पता चला कि दस मात्राओं के ८९ मात्रिक छन्द हो सकते हैं और दस वर्णों के १०२४ वर्ण वृत्त। इसी तरह और आगे भी बढ़ाया जा सकता है।

वर्ण-प्रस्तार

वर्ण प्रस्तार से यह बात जानी जाती है कि अमुक संख्या के वर्णों से कितने प्रकार के छन्द बन सकते हैं। इसके लिये नियम यह है कि जितने वर्णों के छन्द जानने हों, उतने गुरु चिन्ह एक पंक्ति में लिखो। फिर दूसरी पंक्ति में पहले गुरु के नीचे लघु लिखो और बाकी गुरु। तीसरी पंक्ति में दूसरी पंक्ति के सबसे बायें वाले गुरु के नीचे लघु लिखो, आगे का बाकी वैसा ही उतार लो और बाईं ओर सब गुरु लिखो। जब इस प्रकार करते-करते सब लघु हो जायँ, तब प्रस्तार को पूरा हुआ समझो। जैसे, यदि तीन वर्णों का प्रस्तार करना है तो वह इस प्रकार होगा—

पहला रूप	ऽ ऽ ऽ
दूसरा रूप	। ऽ ऽ
तीसरा रूप	। । ऽ
चौथा रूप	। । ।

इसी प्रकार चार वर्णों के प्रस्तार का यह रूप होगा—

पहला रूप	ऽ ऽ ऽ ऽ
दूसरा रूप	। ऽ ऽ ऽ

तीसरा रूप	S I S S
चौथा रूप	I I S S
पाँचवाँ रूप	S S I S
छठा रूप	I S I S
सातवाँ रूप	S I I S
आठवाँ रूप	I I I S
नवाँ रूप	S S S I
दसवाँ रूप	I S S I
ग्यारहवाँ रूप	S I S I
बारहवाँ रूप	I I S I
तेरहवाँ रूप	S S I I
चौदहवाँ रूप	I S I I
पन्द्रहवाँ रूप	S I I I
सोलहवाँ रूप	I I I I

इसी तरह आगे भी समझो।

मात्रा-प्रस्तार

वर्ण-प्रस्तार से मात्रा-प्रस्तार में कुछ भिन्नता है। वर्ण-प्रस्तार में अक्षरों की सख्या निश्चित होती है, पर मात्रा-प्रस्तार में अक्षर चाहे जितने कम या अधिक हों, मात्रा समान होनी चाहिये।

मात्रा-प्रस्तार की यह रीति है कि यदि मात्राओं की सख्या सम है तो पहली पंक्ति में उतने ही गुरु लिखो, जितनी मात्राओं

का प्रस्तार करना हो। और यदि संख्या विषम है तो पहली पंक्ति की बाईं ओर सब से पहले लघु लिखो और बाकी गुरु।

दूसरी पंक्ति में बाईं ओर के सब से पहले गुरु चिन्ह के नीचे लघु लिखकर बाकी सब जैसा का तैसा उतार लो। ऐसा करने से यह निश्चय ही है कि विषम मात्राओं में कमी पड़ जायगी। इसके लिये यह नियम है कि बाईं ओर उतनी ही मात्राओं के लघु या गुरु चिन्ह बढ़ा लो।

जैसे, छ मात्राओं का प्रस्तार। छ सम संख्या है। इसलिये पहली पंक्ति में तीन गुरु लिखे गये—ऽऽऽ

दूसरी पंक्ति में बाईं ओर के पहले गुरु के नीचे लघु लिखा और शेष दोनों गुरु वैसा ही उतार लिया तो यह रूप हुआ—

।ऽऽ

पर ऐसा करने से एक मात्रा की कमी हुई। इसलिये पंक्ति की बाईं ओर एक लघु और बढ़ा दिया। अब यह रूप हुआ—

।।ऽऽ

इसी प्रकार छः मात्रा के तेरह भेद होंगे, जिनका क्रम यह होगा—

ऽऽऽ
।।ऽऽ
।ऽ।ऽ
ऽ।।ऽ
।।।।ऽ
।ऽऽ।

ऽ। ऽ।

।।।ऽ।

ऽऽ।।

।।ऽ।।

।ऽ।।।

ऽ।।।।

।।।।।।

विषम सख्यावाले मात्रा के प्रस्तार में पहली पक्ति मे बाईं ओर पहले लघु लिखा जायगा। उसके बाद शेष गुरु। जैसे,

पाँच मात्रा का प्रस्तार करना हो, तो पहली पक्ति में सब से पहले एक लघु लिखोगे तो यह रूप होगा—। ऽ ऽ

शेष रूप इसप्रकार होंगे—

ऽ। ऽ

।।।ऽ

ऽऽ।

।।ऽ।

।ऽ।।

ऽ।।।

।।।।

चार मात्राओं का प्रस्तार इस प्रकार होगा—

ऽऽ

।।ऽ

।ऽ।

। । ऽ

। । । ।

नष्ट

नष्ट उस रीति को कहते हैं, जिसमें प्रस्तार किये बिना ही बताया जाता है कि इतने वर्णों के प्रस्तार में अमुक रूप कैसा होगा।

नियम यह है कि पूछी हुई संख्या यदि सम है तो पहले लघु लिखो और यदि विषम है तो गुरु। इसके बाद उस अंक को आधा किया। यदि विषम है तो उसमें एक जोड़कर आधा किया। आधा करने पर विषम आवे तो गुरु, और सम आवे तो लघु लिखो। इसी प्रकार आधा करते-करते और विषम और सम के क्रम से गुरु और लघु लिखते-लिखते वहाँ तक जाना चाहिये, जहाँ संख्या पूरी हो जाय। अंतिम रूप ही उत्तर होगा। जैसे—

किसी ने पूछा कि पाँच वर्णों के छन्द का ग्यारहवाँ रूप क्या होगा? उत्तर इस प्रकार होगा—

ग्यारह संख्या विषम है। इससे पहले गुरु लिखा। फिर ग्यारह में एक जोड़कर आधा किया, छः आया। छः सम संख्या है। इसके लिये एक लघु लिख दिया। फिर छः का आधा किया तो ३ आया। यह विषम है। इससे गुरु लिखा। फिर इसका आधा करने के लिये एक जोड़कर चार किया। उसका आधा किया तो २ आया। दो सम है। इससे लघु लिखा। फिर

इस का आधा किया तो एक आया। एक विषम है। इसलिये गुरु लिखो। अब यह रूप हुआ— ऽ। ऽ। ऽ

इस प्रकार चार वर्णों के प्रस्तार का छठा रूप यह हुआ— ।ऽ।ऽ और सात वर्णों के प्रस्तार का पाँचवाँ रूप—ऽऽ।ऽ

उद्दिष्ट

उद्दिष्ट उस रीति को कहते हैं, जिससे यह बताया जाता है कि अमुक रूप का इतने वर्णों के प्रस्तार में कौन-सा भेद है।

रीति यह है कि जितने वर्ण हो, उतने के नीचे एक से लेकर दूने अंक लिखता चला जाय, फिर जितने अंक लघु के नीचे पड़े, उनको जोड़कर उनमें एक मिला दे, वही उत्तर होगा। जैसे, चार वर्ण का ।ऽऽ। रूप कौन-सा भेद है ? यह जानना है, तो उसे इस प्रकार लिखो—

। ऽ ऽ ।
१ २ ४ ८

एक और आठ लघु के नीचे पड़े हैं, उन्हें जोड़ा तो नौ हुये। उसमें एक मिलाया तो दस हुये, यही उत्तर है।
